परमात्मा की अनुभूति

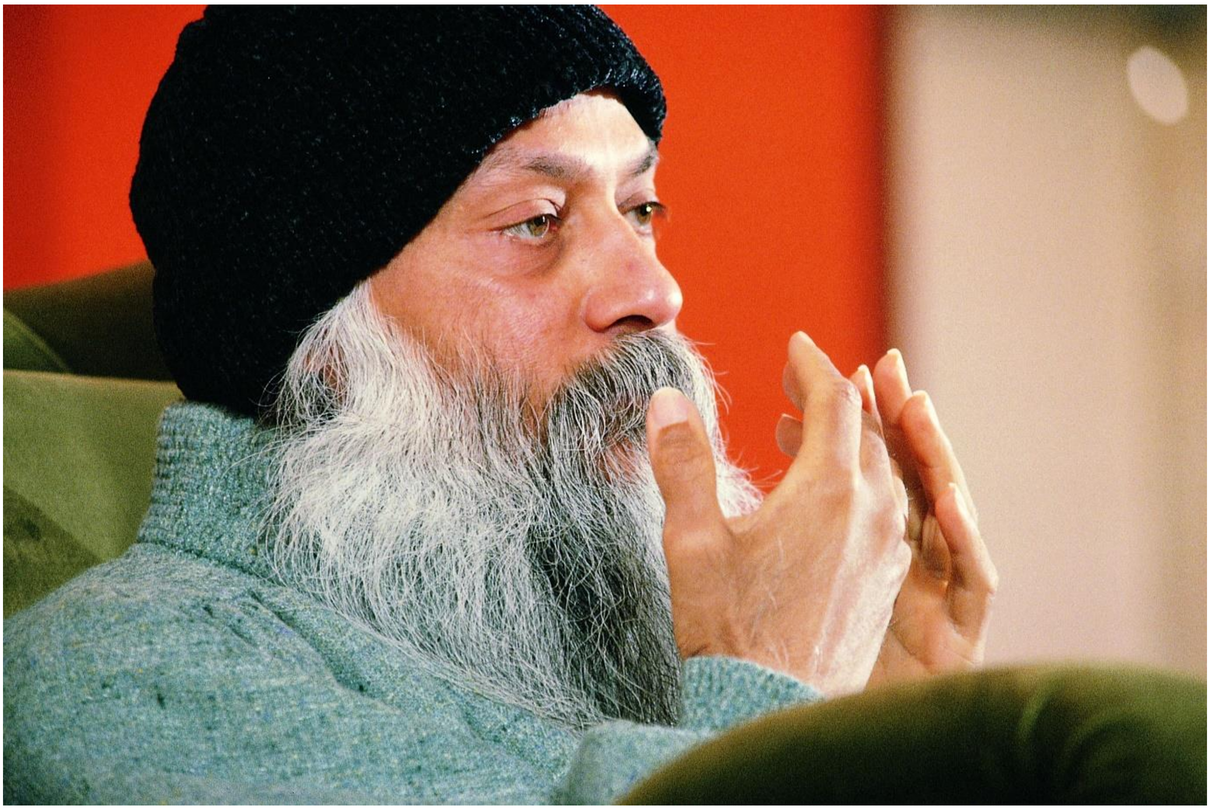

अनुक्रमांक

परमात्मा अर्थात् ओंकार

विज्ञान धर्म और कला

धर्म और विज्ञान का समन्वय

जीवन में जागरुकता

आत्म-बोध -- मैं कौन हूं?

परमात्मा की प्यास और संकल्प

आनंद की खोज की सम्यक दिशा

परमात्मा अर्थात् ओंकार

पिव पिव लागी प्यास-5

ओशो, संत श्रेष्ठ दादू की कुछ साखियां हैं--

सबदै बंध्या सब रहै, सबदै सब ही जाए।
सबदै ही सब उपजै, सबदै सबै समाइ।।
दादू सबदै ही सचु पाइए, सबदै ही संतोष।
सबदै ही स्थिर भया, सबदै ही भागा सोक।।
दादू सबदै ही मुक्ता भया, सबदै समझै प्राण।
सबदै ही सूझै सबै, सबदै सुरझै जाण।।
पहली किया आप थैं उतपत्ती ओंकार।
ओंकार थैं उपजैं, पंच तत्त आकार।।
दादू सबद बाण गुरु साध के, दूरि दिसंतर जाइ।
जेहि लागै सो ऊबरै, सूते लिए जगाइ।।
सबद सरोवर सूभर भरया, हरिजल निर्मल नीर।
दादू पीवै प्रीति सौं, तिनकै अखिल सरीर।।

ओशो, हमें इनका मर्म समझाने की अनुकंपा करें।

नानक ने कहा हैः एक ओंकार सतनाम।

सत्य का एक ही नाम है, वह है ओंकार। ओंकार में भारत की सारी खोज समा जाती है। इस एक छोटे से शब्द में भारत की अनंत-अनंत काल की खोज का सारा रस समाया हुआ है। जिसने इस एक शब्द को समझ लिया, उसने सब समझ लिया। जो इस एक शब्द से वंचित रह गया, वह कुछ और समझ ले, उस समझने का कोई भी मूल्य नहीं। इसलिए इस एक शब्द को बहुत ध्यान से समझने की कोशिश करना।

पहले कुछ प्राथमिक बातें।

पहली तो बातः ओंकार को शब्द कहना ठीक नहीं, मजबूरी है। कुछ कहना पड़ेगा, इसलिए शब्द कहते हैं; लेकिन ओंकार शब्द नहीं है। जैसे और सब शब्द हैं, वैसा ओंकार शब्द नहीं है। क्योंकि, सभी शब्दों का कुछ अर्थ है, ओंकार का कोई भी अर्थ नहीं है, ओंकार अर्थातीत है। शब्द में तो अर्थ होता है; ओंकार में कोई अर्थ नहीं है, ओंकार शुद्ध ध्वनि है। लेकिन उसे ध्वनि कहना भी मजबूरी है। कुछ कहना पड़ेगा, इसलिए कहना पड़ता है।

बहुत ध्वनियां हैं जगत में, लेकिन सभी ध्वनियां दो वस्तुओं के आघात से पैदा होती हैं। उनके लिए पारिभाषिक शब्द हैः आहत-नाद। दो हाथ को टकराओ, ताली बजती है। दो पत्थरों को टकराओ, आवाज होती है। ओंकार अनाहत नाद हैं। वह दो वस्तुओं के टकराव से पैदा नहीं होता। वह एक हाथ की ताली है। शब्द नहीं कह सकते, क्योंकि अर्थातीत है; शब्द में तो अर्थ होना चाहिए। ध्वनि नहीं कह सकते, क्योंकि सभी ध्वनियां आघात से पैदा होती हैं। ओंकार अनाहत है। वह आघात से पैदा नहीं होता।

तीसरी बात, तुम जिस ओंकार का पाठ करते हो, जिस ओंकार की रटन लगाते हो, जिस ओंकार का जाप करते हो, नानक या दादू उस ओंकार की बात नहीं कर रहे हैं। क्योंकि तुम तो जिसकी रटन लगाओगे, वह भी आहत नाद हो जाएगा, वह भी कंठ की टकराहट होगी। तो ओंकार का जाप कोई कर नहीं सकता। ओंकार के जाप के लिए तैयार हो जाओ तुम, एक दिन जाप उतरता है। इसलिए ओंकार को जाप नहीं कह सकते हैं।

ज्ञानियों ने उसे अजपा कहा है। उसका जाप नहीं किया जा सकता। क्योंकि जाप तो तुम कर सकते हो--ओंकार, ओंकार, ओंकार; लेकिन वह तो तुम्हारी कंठ की ही टकराहट है। वह तो तुम्हारा ही पैदा हुआ ओंकार है। वह तो तुमसे पैदा हुआ, तुम्हारी संतान है। और जिस ओंकार की चर्चा हो रही है, वह तो वह ओंकार है, जिसकी हम सब संतान हैं। तुम अपने पिता के पिता नहीं बन सकते। जब तुम ओंकार को जपते हो, तब तुम पिता को पैदा करने की कोशिश कर रहे हो; तब तुम पिता के पिता बनने की चेष्टा में लगे हो।

नहीं, साधक ओंकार को जप नहीं सकता; जपने के द्वारा केवल अपने भीतर उस व्यवस्था को निर्मित करता है जिसमें अजपा उतर आए। सारी साधनाएं सिर्फ निमंत्रण हैं; चेष्टाएं हैं तुम्हें तैयार करने की, ताकि तुम्हारी तैयारी में वह संबंध, वह साज बैठ जाए जहां अनाहत बजने लगता है।

ओंकार जपा नहीं जाता; ओंकार सुना जाता है। ओंकार जपा नहीं जाता, ओंकार हुआ जाता है। जब ओंकार उतरता है तब तुम नहीं बचते, ओंकार ही रहता है। ओंकार महामृत्यु है, इसलिए वह महामंत्र है। बाकी सब मंत्र मंत्र हैं; ओंकार महामंत्र है।

एक बहुत आश्चर्य की बात है कि भारत में तीन बड़े धर्म पैदा हुए--हिंदू, जैन, बौद्ध। तीनों में बड़ा विभेद है, सिद्धांतों की बड़ी टकराहट है। तीनों की मान्यताएं ऐसी अलग-अलग हैं कि उनमें कोई तालमेल बिठालना संभव नहीं है। कोई लाख समन्वय बिठाए, इन तीन में समन्वय बैठ नहीं सकता। वे तो त्रिकोण के तीन कोण हैं; उनको तुम पास नहीं ला सकते। लेकिन एक मत पर वे सब राजी हैं, वह है ओंकार। बौद्ध, जैन, हिंदू इस एक अनूठे शब्द पर राजी हैं। इस संबंध में कोई विरोध नहीं है। इस संबंध में एकदम मतैक्य है।

तो, ऐसा लगता है कि ईश्वर भी गौण है। उस पर भी विवाद हो सकता है कि है या नहीं; आत्मा भी गौण है--उस पर भी चर्चा चलने की सुविधा है कि है या नहीं। जैन ईश्वर को नहीं मानते। बौद्ध तो आत्मा को भी नहीं मानते। लेकिन ओंकार को तीनों ही मानते हैं। ओंकार लगता है, आत्मा और परमात्मा से भी बड़ा है। निर्विवाद वही एक मालूम होता है।

और ऐसा केवल भारत के धर्मों के संबंध में ही सच नहीं है, भारत के बाहर पैदा हुए धर्म भी ओंकार को अनजाने रूप से मानते हैं। उनकी व्याख्या में थोड़ी भूल हो गई है। व्याख्या में भूल का कारण है।

जब ओंकार की ध्वनि सुनी जाती है तो अगर तुम ठीक-ठीक सजग न हुए, अगर तुम बिल्कुल ही न मिट गए और तुम्हारे मन की कहीं किसी कोने-कातर में कोई छाया छिपी रही तो तुम शुद्ध ध्वनि को न पकड़ पाओगे। तुम्हारा मन ध्वनि को उतना तोड़ देगा।

भारत के तो सभी धर्मों ने मन को मिटाने की चेष्टा की है। इसलिए जब मन मिट जाता है तो ओंकार की शुद्ध ध्वनि सुनाई पड़ती है। भारत के बाहर जो धर्म पैदा हुआ--ज्यू, इस्लाम, ईसाइयत--उन तीनों ने मन को मिटाने की चेष्टा नहीं की है, बल्कि मन को शुद्ध करने की चेष्टा की है। शुद्ध होकर भी मन तो बचता है, पूरा नहीं मिट जाता। बिल्कुल शुद्ध हो जाता है, पारदर्शी हो जाता है, हवा की तरह हो जाता है; तुम छू भी नहीं सकते; पता भी नहीं चलता कि है, लेकिन होता है।

मन के न हो जाने पर जो ओंकार सुनाई पड़ा था, तब तो हमने ओंकार को सीधा पकड़ लिया। मन के होने पर; शुद्ध मन के होने पर जो सुनाई पड़ा तो रूप थोड़ा बदल गया। मन ने थोड़ी सी झंझट थोड़ी सी विकृति पैदा की। इसलिए मुसलमान, यहूदी और ईसाइयत अपनी प्रार्थनाओं के अंत से जिस शब्द में पूर्ण करते हैं प्रार्थना को--ओमीन या अमीन--वह

ओम का ही रूप है। और उनके पास भी उसका कोई उत्तर नहीं है कि अमीन का क्या अर्थ होता है। वह ओम का ही रूप है--ओम, ओमन, अमीन।

अंग्रेजी में तीन शब्द है--ओमनीप्रेजेंट, ओमनीपोटेंट, ओमनीसाइंट। अंग्रेजी भाषाविद बड़ी कठिनाई में पड़ते हैं, क्योंकि वे इन शब्दों का मूल नहीं खोज पाते। ये आते कहां से हैं? ये शब्द बड़े अनूठे हैं। ओमनीसाइंट का अर्थ होता हैः जिसने सब देख लिया। लेकिन ओमीन कहां से आता है? वह ओम का ही रूप है। जिसने ओम देख लिया, उसने सब देख लिया।

ओमनीप्रेजेंट का अर्थ हैः जो सब जगह मौजूद है। लेकिन वह ओमन कहां से आता है? वह ओम का ही रूप है। ओमनीप्रेजेंट का अर्थ हैः जो ओम के साथ एक हो गया, वह सब जगह मौजूद हो गया। तुम एक जगह हो। जिस दिन तुम ओम के साथ एकरूप हो जाओगे, तुम सब जगह हो जाओगे। ऐसी कोई जगह न होगी जगत में जहां तुम न होओगे। तुम अस्तित्व के साथ एक हो जाओगे।

ओमनीपोटेंट का अर्थ होता हैः जिसके पास सारी शक्ति है। लेकिन मतलब इतना ही होता है कि जिसके पास ओम की शक्ति है। जिसने ओम को पा लिया, सब पा लिया। जो ओम के साथ एक हो गया, वह सब हो गया। जो ओम में डूब गया, वह सर्वशक्तिशाली हो गया।

यह ओम बड़ा अनूठा शब्द है!

भारत ने जो भी खोजा है अंतर-जगत में, वह इस एक छोटे से सूत्र में समाहित है। जैसे आइंस्टीन की सापेक्षतावाद की सारी खोजना एक छोटे से सिद्धांत में समा जाती है, ऐसे ही ओम के छोटे से सूत्र में, छोटे से सिद्धांत में भारत की सारी अंतर-खोज समा गई है। बाहर की खोज में तो अभी बहुत कुछ बाकी है। इसलिए आइंस्टीन जल्दी ही तिथिबाह्य, आउट ॅाफ डेट हो जाएंगे। कोई दूसरा उनकी जगह ले लेगा; ले ही ली है जगह। लेकिन ओम के आगे भीतर की कोई खोज बाकी नहीं बची। वह यात्रा पूरी हो गई है। वहां हम मंजिल पर पहुंच गए हैं। इसलिए ओम को कभी भी विस्थापित नहीं किया जा सकता। वह सिंहासन पर रहेगा ही। तुम उससे दूर भटक सकते हो। तुम उसे भूल सकते हो। लेकिन उसे तुम सिंहासन से नहीं उतार सकते। जब भी तुम घर आओगे, तुम ओम को सिंहासन पर विराजमान पाओगे।

यह जो ओम है, इसके संबंध में कुछ और बात ख्याल ले लें।

विज्ञान कहता है कि सारा जगत विद्युत-तरंगों से बना है--पत्थर भी, सोना भी। सारा अस्तित्व, सारी वस्तुएं, सारा पदार्थ-पदार्थ नहीं है--विद्युत-तरंगों का घनीभूत रूप है।

हमने कुछ ओर जाना है। हमने यह जाना है इधर पूर्व में; भीतर प्रवेश करते-करते कि सारा जगत ध्वनियों का ही संगृहीभूत रूप है और विद्युत ध्वनि का एक प्रकार है। वैज्ञानिक कहते हैं, ध्वनि विद्युत का एक प्रकार है और सारा जगत विद्युत की तरंगों का जाल है। हम कहते हैं, सारा जगत ध्वनि का जाल है और विद्युत भी ध्वनि का एक प्रकार है। तुमने कहानियां सुनी होंगी कि तानसेन ने दीपक राग से दीपक जला दिए। इसकी संभावना है। ध्वनि का आघात अग्नि को पैदा कर सकता है। इसकी संभावना है। इस पर बहुत प्रयोग चलते हैं।

और इस बात को इनकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि आघात से ही तो विद्युत पैदा होती है। पहाड़ से जल गिरता है, उसकी चोट से विद्युत पैदा होती है। दो चकमक पत्थरों को तुम टकरा दो, आग पैदा हो जाती है। तुम दो हाथों को रगड़ो, हाथ गरम हो जाते हैं। रगड़ से गरमी पैदा होती है, विद्युत पैदा होती है।

दो ध्वनियों की रगड़ से भी विद्युत पैदा होती है, लेकिन बड़ी सूक्ष्म कला है। शायद शास्त्र भूल गया हो, हमें याद न रहा हो, कैसे हम दो ध्वनियों को टकराएं। लेकिन कभी किसी ने तानसेन ने या किसी ने भी, दो ध्वनियों को टकराना सीख लिया हो तो दीये जल सकते हैं। जब दो पत्थरों के टकराने से आग पैदा हो सकती है तो दो ध्वनियों के टकराने से क्यों पैदा नहीं हो सकती? टकराहट उष्मा पैदा करती है, गरमी पैदा करती है।

और अब तो विज्ञान भी धीरे-धीरे शिथिल हुआ है। उसकी पुरानी जिद नहीं रही, पुरानी अकड़ नहीं रही। रस्सी तो जल गई है। पर जली हुई रस्सी में भी पुरानी अकड़ तो रह ही जाती है, बस उतनी ही अकड़ विज्ञान में बची है।

हजारों प्रयोग चल रहे हैं सारी पृथ्वी पर, जो विज्ञान को जड़ों से उखाड़े डाल रहे हैं। ध्वनि पर बहुत प्रयोग हुए हैं।

इंग्लैंड में एक बहुत प्रसिद्ध प्रयोगशाला है--डिलाबार। वहां उन्होंने बड़े प्रयोग किए हैं। विशेष संगीत के प्रभाव में बे-मौसम में वृक्षों में फल आ जाते हैं। विशेष संगीत के प्रभाव में वृक्ष दुगनी गति से बढ़ते हैं। विशेष संगीत के प्रभाव में मां के गर्भ का बच्चा बहुत तीव्रता से परिपुष्ट होने लगता है। जो पौधा बिना संगीत के साल भर में बड़ा होता है, वह दो महीने में उतना बड़ा हो जाता है संगीत के साथ।

पौधे सुनते हैं।

कनाडा में एक छोटा सा प्रयोग किया गया। जहां रविशंकर पंद्रह दिन तक सितार बजाता था। उसके दोनों तरफ बीज बोए गए थे। जो पौधे पैदा हुए वे सब रविशंकर की तरफ झुके थे, दोनों तरफ से, जैसे की बहरा आदमी कान झुका लेता है। वे सब पौधे झुके हुए पैदा हुए। एक भी पौधा नहीं था जो संगीत सुनने को उत्सुक न हो। भवन के बाहर दूसरे बीज बोए गए थे, उसी दिन जिस दिन भवन के भीतर के बीज बोए गए थे। वे सब सीधे पैदा हुए थे। क्या हुआ? पौधे सुनने को आतुर थे। और बाहर जो पौधे थे वे आधे ही बढ़े। पंद्रह दिन के प्रयोग में भीतर के पौधे दुगने बढ़ गए। उनकी शान और थी।

ध्वनि में भोजन है, जीवन है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है जो संगीत से आंदोलित न होता हो, जिसके पैर न थिरकने लगते हों, जिसके हाथ ताल न देने लगते हों, जिसके भीतर कोई धुन न बजने लगती हो।

और अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि धातुएं भी--पौधे तो ठीक, धातुएं भी--संगीत से प्रभावित होती हैं। अगर कोई धातु को संगीत सुनाया जाए, तो उसमें जंग लगना मुश्किल हो जाता है। इस बात की बहुत संभावना है कि अशोक की लाट जो दिल्ली में खड़ी है--जिसको वैज्ञानिक नहीं समझ पाए अब तक कि उस पर जंग क्यों नहीं लगती, क्योंकि सदियों से खड़ी है, वर्षा, धूप, सब मौसम आते हैं, जाते हैं, अभी तक वैज्ञानिक ऐसा कोई स्टेनलेस स्टील पैदा नहीं कर सके जो सदियों तक धूप में, वर्षा में बाहर पड़ा रहे और जिस पर जंग का एक दाग न आया हो। मेरी अपनी समझ यह है कि बहुत गहन संगीत में उस लाट को तैयार किया गया है, बड़े मंत्रोच्चारों के बीच उस लाट को तैयार किया गया है। मंत्र उसे अब भी सुरक्षित किए हैं। वे अब भी उसकी रक्षा कर रहे हैं।

इजिप्त के पिरामिड हैं। वे पिरामिड इतने बड़े पत्थरों से बने हैं कि हमारे पास अभी जो क्रेनें हैं, विकसिततम, वे भी उन पत्थरों को उठाने में समर्थ नहीं हैं। और आज से पांच हजार या चार हजार साल पहले उन पत्थरों को ले जाने का कोई उपाय नहीं मालूम पड़ता। और जहां वे पिरामिड बने हैं, वहां पास पत्थरों का कोई खदान नहीं है; सैकड़ों मील दूर खदानें हैं। रेगिस्तान में खड़े हैं पिरामिड। तो पत्थरों को सैकड़ों मील दूर से लाया गया है। उन दिनों क्रेनों का कोई सवाल नहीं उठता, क्योंकि कोई प्रमाण नहीं मिलता कि एक भी क्रेन थी या कोई यंत्र था। निहत्थे आदमियों ने उनको ढोया है। यह बिल्कुल असंभव है। यह हो कैसे सकता है? लेकिन ध्वनि का शास्त्र कहता है कि एक विशेष ध्वनि की अवस्था में वस्तुएं निर्भार हो जाती हैं।

तुमने भी शायद कभी गौर किया होगा कि जब तुम नाचते हो, प्रसन्न होते हो, गीत तुम्हारे हृदय में गूंज़ता है तो तुम्हें बोझ नहीं मालूम पड़ता, तुम एकदम हलके हो जाते हो। जब पैर जमे होते हैं और नाच पैदा नहीं होता, जब हृदय बंद होता है और गीत नहीं फूटता और कहीं चारों तरफ कोई नृत्य की पुकार नहीं आती, तब तुम अपने को पाते हो जैसे पत्थर हो गए और वजनी हो गए।

तुमने ख्याल किया होगा, साधारण मजदूर आज भी जब किसी बड़े पत्थर को उठाते हैं तो बड़ा हो-हल्ला मचाते हैं। लेकिन उस हो-हल्ले में एक संगीत होता है--हैय्या हे! यह ध्वनि अगर बार-बार दोहराई जाए तो मजदूर बड़े से बड़े पत्थर को उठा लाता है।

तुमने नाविकों को मझधार में नदी को पार करते देखा हो पूर की, तो हैय्या-हे। जब नदी बहुत टक्कर देने लगती है और आदमी की ताकत कमजोर पड़ने लगती है, तब स्वर को पुकारा जाता है। स्वर तत्क्षण बचा लेता है। बड़ी ताकत दौड़ जाती है भीतर।

स्वर में छिपी हुई ऊर्जा है। ओंकार का अर्थ हैः मूल स्वर, जिससे फिर सब स्वर पैदा हुए, मूल-स्रोत। आज उससे हमारे संबंध छूट गए, नाता नहीं रहा। हम भूल ही गए उन शिखरों को जो छू लिए गए थे।

हम सोचते हैं, दुनिया जैसे पहली बार सभ्य हो रही है। भ्रांति है। दुनिया बहुत बार सभ्य हो चुकी है। और दुनिया ने बहुत बार बड़ी उत्तुंग ऊंचाइयां पा ली हैं। और फिर उत्तुंग ऊंचाइयां खो जाती हैं।

अब आज प्रार्थना कोरा शब्द है, पूजा एक औपचारिकता है।

मैं एक घर में मेहमान था। इकलौता बेटा घर का देर तक सोकर नहीं उठा था, तो मां उससे कह रही थी कि बेटा उठो, तुम ऋषि-मुनियों के देश में पैदा हुए हो, ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए। उस बेटे ने बिस्तर में ही पड़े-पड़े करवट लेकर कहा कि मां, तुमको पता नहीं, ऋषि कपूर नौ बजे के पहले कभी नहीं उठता और दादा मुनि अशोक कुमार तो दोपहर तक सोते हैं।

ऋषि-मुनि खो गए; ऋषि कपूर, अशोक कुमार रह गए!

प्रार्थना कोरा शब्द है। पूजा एक ढोंग है। जाप निरर्थक मालूम होता है। भगवान का नाम लोग जानते ही नहीं, कैसे लें, कब लें।

मैं एक मित्र के बेटे से पूछ रहा था कि तुम्हारे पिता कभी प्रार्थना करते हैं? उसने कहाः कल ही कर रहे थे। मैं थोड़ा चौंका, क्योंकि उनके पिता से प्रार्थना का कोई संबंध जुड़ेगा, इसकी आशा भी नहीं की जा सकती। मैंने पूछाः बताओ, क्या प्रार्थना की? उसने कहाः शाम को ही भोजन के वक्त प्रार्थना कर रहे थे। बोले--हे भगवान! फिर वही मूंग की खिचड़ी?

बस प्रार्थना इतनी हो गई है! प्रार्थना एक शिकायत है।

एक मित्र कल सांझ को ही मुझे मिलने आए थे। वे कहते हैं कि परमात्मा से वे नाराज हो गए। प्रार्थना करते थे, पूजा करते थे, ध्यान करते थे, और बच्चा पैदा नहीं हुआ, तो वे नाराज हो गए! --हे भगवान! फिर मूंग की खिचड़ी! तो अब वे प्रार्थना नहीं करेंगे, पूजा नहीं करेंगे--नाराज हैं।

यह प्रार्थना कैसी, यह पूजा कैसी, यह अर्चना कैसी? यह कोई सौदा है? तुम परमात्मा पर कोई अहसान कर रहे थे? कहने लगेः मैंने कभी कुछ मांगा नहीं; इतनी पूजा-प्रार्थना की, फिर भी बच्चा पैदा नहीं हुआ।

अगर मांगा ही न था, तो यह सवाल ही क्यों उठता है कि फिर बच्चा पैदा न हुआ? मांग तो रही ही होगी। तुम्हारी पूजा झूठी है। तुम्हारी पूजा रिश्वत से ज्यादा नहीं। तुम परमात्मा की रिश्वत कर रहे हो। तुम कोशिश कर रहे हो फुसलाने की उसे, ताकि तुम्हारे भीतर छिपी हुई जो वासना है, उसे वह पूरा कर दे। तुम परमात्मा को अपनी वासना का चाकर बनाना चाहते हो।

भक्त तो कहते हैंः 'म्हाने चाकर राखो जी!' प्रार्थना जो करते हैं, तो मीरा कहती है, 'गिरधर! मुझे अपना नौकर बना लो!' तुम परमात्मा को नौकर बनाने की कोशिश में लगे हो। बस, वहीं चूक हो जाती है। अगर कुछ भी मांगा तो प्रार्थना खो गई। अगर कुछ भी चाहा तो पूजा पूजा न रही, भ्रष्ट हो गई, कुरूप हो गई। और ओंकार तो तब उतरता है जब तुम मंदिर की तरह शुद्ध, पवित्र हो जाते हो, निर्दोष हो जाते हो; जब तुम एक छोटे बच्चे की तरह कुंआरे हो जाते हो।

अभी पिछले वर्ष...

इजरायल में एक बहुत अनूठा आदमी है, उसका नाम है, यूरी गैलर। वह सिर्फ इशारे से बिना वस्तुओं को छुए, उनको तोड़-मरोड़ देता है। चाकू उसके सामने करो, बस वह सिर्फ हाथ का इशारा करेगा, चाकू मुड़ कर गोल हो जाएगा। सींखचे मजबूत उसके सामने करो, वह दस फीट, बीस फीट की दूरी से उनको झुका देगा, सिर्फ इशारे से, जिनको तुम ताकत लगा कर नहीं झुका सकते।

तो पिछले वर्ष एक बहुत अनूठी घटना घटी। इंग्लैंड में बी.बी.सी. टेलीविजन पर उसने अपना प्रयोग दिखलाया और सिर्फ उत्सुकता, सिर्फ एक अनहोनी घटना की संभावना के कारण उसने टी.वी. पर प्रयोग बतलाते समय कहा कि जो लोग भी टी.वी. देख रहे हैं, वे भी अपने घरों में प्रयोग करें, मेरे साथ, कौन जाने उनमें से कुछ लोग (क्योंकि करीब लाखों लोग टी.वी. देख रहे थे, यूरी गैलर टी.वी. पर था)शायद कुछ लोगों के पास ऐसी क्षमता हो जिनका उन्हें भी पता नहीं है। तो हजारों लोगों ने प्रयोग किए। दूसरे दिन जो रिपोर्ट आई, उसमें पंद्रह सौ लोग सफल हो गए थे, जिन्होंने यूरी गैलर के साथ ही टी.वी. पर देखते वक्त चीजों को आज्ञा दी, वे मुड़ गईं। मगर एक बड़ी आश्चर्य की बात थी कि वह जो पंद्रह सौ लोग सफल हुए थे, वे सब बच्चे थे। उनकी कोई की भी उम्र चौदह साल से ज्यादा नहीं थी और किसी की भी उम्र सात साल से कम नहीं थी। सात और चौदह के बीच में थे, वे सभी बच्चे थे।

सात और चौदह के बीच कुंआरापन होता है। वीर्य की ऊर्जा अपनी परिपूर्ण शुद्धता में होती है। शक्ति होती है और एक भोलापन होता है। जहां शक्ति और भोलेपन का मिलन हो जाता है, वहीं परम की घटना घटती है।

यूरी गैलर भी भरोसा न कर सका कि यह कैसे हुआ? और बड़ी तो बात यह थी कि सात और चौदह के बीच ही क्यों हुआ?

चौदह के बाद जीवन में वासना, कामना घेर लेती है। मन फिर स्वच्छ नहीं रह जाता। मंदिर की पूजा में वासना प्रविष्ट हो जाती है। सात के पहले मन तो पवित्र होता है, लेकिन ऊर्जा नहीं होती।

तो सात और चौदह जीवन का सबसे महत्वपूर्ण समय है और वही बरबाद किया जा रहा है। सारी दुनिया में बरबाद किया जा रहा है। इसलिए इस देश में तो हम उन सारे क्षणों का बड़ा उपयोग करते थे। सात वर्ष का होते ही बच्चे को हम गुरुकुल भेज देते थे; वह जंगल चला जाता था। वहां से हम उसे इक्कीस के पहले नहीं बुलाते थे। चौदह की उम्र के सात वर्ष पहले हम उसे भेज देते थे और चौदह के बाद सात वर्ष तक और उसे वहां रहने देते थे, ताकि जिस पावनता को उसने अनुभव किया है, उसमें गहन हो जाए, सुदृढ़ हो जाए। फिर जब वापस लौटे जगत में तो जगत उसे छू भी न सके। वह जगत से गुजर जाए लेकिन जगत उसे स्पर्श भी न कर सके। फिर वह विवाह भी करेगा, लेकिन उसका ब्रह्मचर्य खंडित न होगा। उसके बच्चे भी पैदा होंगे लेकिन कामना कभी उसको विकृत न करेगी। यह सब कर्तव्य होगा। करना है, इसलिए वह करेगा। लेकिन उसका बिस्तर सदा बंधा रहेगा कि कब यह पूरा हो जाए और मैं वापस लौट जाऊं। क्योंकि जो स्वाद उसने चख लिया है उन थोड़े से शक्ति के क्षणों में, वह बुलाए चला जाता है, उसकी पुकार अहर्निश सुनाई पड़ती है--सोता है, जागता है, दुकान पर काम करता है, बच्चों को बड़ा करता है, लेकिन वह पुकार खींचती है, स्वाद एक बार लग जाए परमात्मा का, तो फिर बात ही और हो जाती है।

तुम पूजा तो करते हो बिना स्वाद के। प्रार्थना करते हो बिना स्वाद के। और प्रार्थना भी करते हो, पूजा भी करते हो, कुछ पाने के लिए। नहीं, तुम ओंकार को कभी न जान पाओगे। अगर ओंकार को जानना है, सब कामना छोड़ देनी होगी; मांग ही छोड़ देनी होगी; खाली हो जाना होगा।

दादू इसी महामंत्र के संबंध में बात कर रहे हैं। समझने की कोशिश करें।

सबदै बंध्या सब रहै, सबदै सब ही जाइ।

सबदै ही सब उपजै, सबदै सबै समाइ।।

शब्द से अर्थ हैः ओंकार--शब्दों का शब्द ओंकार।

सबदै बंध्या सब रहै, ...

अगर तुम्हारे भीतर ओंकार की धुन बजे तो तुम्हारे भीतर एक एकता होगी, तुम बंधे रहोगे। टूट-फूट न जाओगे, खंड-खंड न हो जाओगे, अखंड रहोगे। जैसे माला में पिरोया हुआ धागा माला के मनकों को बांधे रखता है, ऐसे ओंकार की ध्वनि अगर तुम्हें सुनाई पड़ने लगे तो तुम्हारे जीवन के सब मनके अनुस्यूत हो जाएंगे, एक माला बन जाएगी। अभी तुम सिर्फ

मनकों का एक ढेर हो, माला नहीं, क्योंकि धागा नहीं है, जो तुम्हारे सब कृत्यों में, सब भावों में, सब विचारों में समा जाए और सबको एक एकता में बांध ले।

मनस्विद कहते हैं कि, आदमी एक भीड़ है। वे ठीक कहते हैं। तुम भीड़ हो। तुम्हारे भीतर बहुत आदमी है। आदमी ही आदमी हैं। तुम एक बाजार हो। तुम्हारे भीतर एक का अभी जन्म नहीं हुआ, क्योंकि एक के जन्म के लिए तो तुम्हें एक होना पड़ेगा; तुम्हें भीड़ को समेटना होगा; तुम्हें खंड-खंड, जो तुम बंट गए हो, उस सबको जोड़ना होगा।

ओंकार सीमेंट है, जोड़ता है; खंड को खंड से एक कर देता है, अखंड का जन्म होता है। और जिस दिन तुम अखंड होते हो, उस दिन कैसी चिंता, कैसा तनाव? सारा तनाव, सारी चिंता, बेचैनी भीड़ की वजह से है। कोई पश्चिम की तरफ खींच रहा है तुम्हारे भीतर का हिस्सा, कोई पूर्व की तरफ खींच रहा है। कोई नरक जाना चाहता है, कोई स्वर्ग जाना चाहता है। कोई पूजा करना चाहता है, कोई वेश्या का विचार कर रहा है। कुछ भी तुम कर नहीं पाते। एकस्वरता नहीं है। करते भी हो तो अधूरा होता है। प्रार्थना करने भी बैठे हो तो वहां मन नहीं होता। बस एक छोटा सा हिस्सा गुनगुनाए चला जाता है। वह ऐसी ही हालत होती है जैसे तुम रेडियो सुन रहे हो और बैटरी बिल्कुल फीकी हो गई, बामुश्किल सुनाई पड़ता है कुछ। ऐसी ही तुम्हारी प्रार्थना है पूरी ऊर्जा नहीं बहती। ऊर्जा कहीं और जा रही है।

तुम स्वर्ग भी पहुंच जाओ तो भी तुम पूरे न पहुंचोगे। तुम्हारा एकाध टुकड़ा पहुंचेगा, बाकी तुम नरक में पड़े रहोगे। और दोनों के बीच जो दूरी होगी, वही तुम्हारा तनाव है। तनाव का एक ही अर्थ है कि तुम्हारे टुकड़ों के बीच बड़ी दूरी है, बड़ा खिंचाव है। एक हाथ एक तरफ खींचा जा रहा है, दूसरा हाथ दूसरी तरफ खींचा जा रहा है। यही तो बेचैनी है।

एक ही चैन है दुनिया में, और वह है जब तुम एक हो जाओ।

दादू कहते हैंः

सबदै बंध्या सब रहै, सबदै सब ही जाइ।

सबदै ही सब उपजै, सबदै सबै समाइ।।

उसी से तो बंधन, उसी में तो तुम एक होते हो। वही तो तुम्हें जोड़ता है। और तुम्हें ही नहीं, सारा अस्तित्व ओंकार से जुड़ा है।

जब तुम परिपूर्ण शून्य हो जाओगे, तब भी तुम्हें धुन सुनाई पड़ती रहेगी। वह शून्य की धुन होगी। वही ओंकार है। शून्य का संगीत है ओंकार।

तुमने कभी रात का सन्नाटा सुना है? सन्नाटे का भी एक संगीत है। जब कोई भी आवाज नहीं होती, तब भी एक आवाज बच रहती है। जब सब शोरगुल खो जाता है तब उस सन्नाटे में भी एक स्वर होता है। ऐसे ही जब तुम्हारे भीतर की सब भीड़, सब शोरगुल खो जाएगा, तब तुम्हारे भीतर तुम्हें एक स्वर सुनाई पड़ेगा, वही ओंकार है। शून्य का संगीत है ओंकार।

और तुम्हें ही नहीं बांधे हुए है; सारे अस्तित्व को बांधे हुए है, साधे हुए है। वही है आधार। उसके बिना सब बिखर जाएगा।

सबदै बंध्या सब रहै, सबदै सब ही जाइ।

और अगर वह शब्द तुमसे खो जाए तो तुम एक बिखरी हुई स्थिति में हो जाते हो। तब तुम्हारी आकृति विकृत हो जाती है; तुम्हारा रुप कुरूप हो जाता है; तुम्हारे कंठ में बांसुरी नहीं बजती; तुम्हारी आंखों में ओज नहीं रह जाता; तुम्हारे जीवन की धारा जगह-जगह टूट जाती है, जैसे कभी ग्रीष्म के दिनों में नदियां टूट जाती हैं--एक डबरा भरा है, फिर रेत आ गई, फिर थोड़ा सा डबरा रह गया, फिर रेत आ गई।

जो ओंकार से जुड़ा है, वह पूर आई नदी की भांति है, अखंड है। स्रोत से लेकर अंत तक, गंगोत्री से लेकर गंगासागर तक एक है।

सबदै ही सब उपजै, ...

इस ओंकार से ही सबका जन्म हुआ है और इस ओंकार में ही सबको लीन हो जाना है। क्योंकि, हमारी समझ से, अंतर-खोजियों की दृष्टि से, ओंकार की ध्वनि इस जगत का सारभूत तत्व है। ओंकार के ही संघात से, चोट से सब पैदा हुआ है, और ओंकार की ही पर्त दर पर्त जमती जाती है और विभिन्न रुप पैदा होते हैं।

इसमें कुछ आश्चर्य जैसा नहीं है। क्योंकि विज्ञान कहता है, विद्युत से सारी चीजें पैदा हुई हैं। क्या फर्क पड़ता है, विद्युत से पैदा हों या ध्वनि से पैदा हों? दोनों ही बातें समझ में आने जैसी हैं। लेकिन यह भेद क्यों है? क्योंकि विज्ञान बाहर से खोजता है। बाहर से जो चीज विद्युत जैसी दिखाई पड़ रही है, वही चीज भीतर से ध्वनि जैसी दिखाई पड़ती है।

एक तो है मकान के बाहर से देख जाने वाला आदमी और एक है अतिथि की तरह मकान के भीतर आ जाने वाला आदमी--धर्म और विज्ञान में यही फर्क है। विज्ञान बाहर-बाहर घूमता है, तो बाहर की रेखा और परिधि को पहचान लेता है ठीक से। धर्म अंतर्गृह में प्रवेश करता है और भीतर से चीजों को जानता है।

दोनों के मध्य में कला का जगत है--कवि का, चित्रकार का, मूर्तिकार का। मूर्तिकार दोनों के बीच है। चित्रकार दोनों के बीच है। कवि दोनों के बीच है। कवि साधारणतः तो बाहर हो जाता है, साधारणतः तो बाहर रहता है; लेकिन कभी मौका मिल जाए तो चोर की तरह भीतर प्रविष्ट हो जाता है। कला एक तरह की चोरी है। कभी-कभी चोर तुम्हारे घर में रात के अंधेरे में घुस आता है। वह अतिथि नहीं है। वह निमंत्रित भी नहीं है। सामने के द्वार से भी प्रवेश नहीं किया है। वस्तुतः तो जब मेजबान सोया है, तब वह आता है। अगर मेजबान जागा हो तो वह आएगा ही नहीं।

विज्ञान बाहर घूमता रहता है। कवि कभी-कभी चोरी से भीतर प्रवेश कर जाता है। इसलिए कविता में कभी-कभी धर्म की धुन सुनाई पड़ती है। काव्य में कभी-कभी परम अनुभूति का थोड़ा सा प्रकाश मालूम पड़ता है। और अक्सर यह होता है कि अगर किसी कवि की कविता पढ़ो तुम तो तुम्हारे मन में एक छाया पैदा होती है कवि की कि कितना सुंदर, कितना भव्य, कितना दिव्य न होगा यह व्यक्ति।

मगर भूल कर इस व्यक्ति को मिलने मत जाना, नहीं तो तुम उसे बैठे किसी होटल में चाय पीते पाओगे, या बीड़ी सुलगाते पाओगे। और तुम बड़े हैरान होओगे और बड़े उदास कि इतनी ऊंचाई थी कविता की और यह यह कवि कहां पड़ा है! और कवि तुम्हें बिल्कुल साधारण आदमी मालूम पड़ेगा। उसका कोई कसूर भी नहीं है। साधारणतः वह बाहर रहता है। मौके-बेमौके, अंधेरे-उजाले, कभी समय पाकर चोरी से भीतर घुस जाता है।

धर्म अतिथि की तरह भीतर प्रवेश करता है--आमंत्रित अतिथि की तरह तैयार होकर प्रवेश करता है। इसलिए हमने इस मुल्क में कवियों को दो शब्द दिए हैं, दोनों का मतलब एक होता है। और दुनिया की किसी भाषा में कवि के लिए दो शब्द नहीं है, सिर्फ भारत की भाषाओं में है। एक को हम कवि कहते हैं, दूसरे को हम ऋषि कहते हैं--दोनों का मतलब एक ही है। दोनों का मतलब हैः द्रष्टा, जिसने देखा।

लेकिन दोनों में फर्क क्या है? एक ने चोर की तरह देखा। घुसा वह भी घर के भीतर, मगर डरा-डरा घुसा। घुसा वह भी, लेकिन बिना तैयारी के घुसा। घुसा वह भी, लेकिन योग्य न था और घुसा। घुसा वह भी, लेकिन मालिक जब सोया था, तब घुसा। थोड़ी खबर ले आता है, जैसा कि चोर भी घर के भीतर की थोड़ी खबर देगा; लेकिन अंधेरे में बहुत ज्यादा देखा नहीं जा सकता। और घबड़ाया हुआ, डरा हुआ, दूसरे के घर में कितना देख पाएगा; थोड़ी-बहुत खबर ले आता है।

धर्म तैयार होकर भीतर जाता है। साधक तैयारी करता है, अपने को योग्य बनाता है, पात्र बनाता है। प्रतीक्षा करता है तब तक द्वार पर, जब तक कि बुला न लिया जाए। द्वार पर दस्तक भी नहीं देता--क्योंकि जब योग्य हो जाऊंगा, मालिक के योग्य हो जाऊंगा, बुला लिया जाऊंगा--प्रतीक्षा करता है। तब वह जो देखता है, वह बात ही और है! वह है ऋषि।

उपनिषद के कवियों को हम ऋषि कहते हैं। बड़ी मुश्किल से कभी हजार कवियों में एक कवि ऋषि होता है। ऋषि का मतलब हैः जो उसने जाना है वह सिर्फ जाना ही नहीं, वह उसका जीवन भी है। और कवि का अर्थ होता हैः जिसने जाना है वह अलग, उसका जीवन अलग। तुम उसके जीवन में खोजबीन करने मत जाना। तुम उसकी कविता को पढ़ना और कविता से कुछ पा सको तो पा लेना; लेकिन कवि को खोजने मत जाना, अन्यथा निराशा हाथ लगेगी।

अगर कवि को खोज के भी तुम्हें कविता ही दिखाई पड़े कवि में तो वह ऋषि है। ऐसा कभी-कभी होता है। कोई एक रविंद्रनाथ, कोई एक खलील जिब्रान, सिर्फ कवि नहीं होता, ऋषि भी होता है। तब वह सिर्फ गाता ही नहीं; जो गाता है, उसे जीता भी है। उसके शब्द शब्द ही नहीं होते; उसके शब्द में उसके प्राण की धड़कन होती है। तब वह अपने को उंड़ेलता है। और जो जाना है उसने, जीकर जाना है। चोरी से, खिड़की से, पीछे के द्वार से झलक नहीं ली है; मेहमान की तरह परमात्मा के भवन का वासी बना है। और जो वहां मेहमान की तरह रहा है, वह सदा के लिए रूपांतरित हो जाता है।

सबदै बंध्या सब रहै, सबदै सब ही जाइ।

सबदै ही सब उपजै, सबदै सबै समाइ।।

उसको, जिसको विज्ञान बाहर से देखता है, और कहता है विद्युत, उसे धर्म भीतर से देखता है और कहता है शब्द। और दोनों के बीच में कवि है, कला है। वह उसे कहती है रस--रसो वै सः। रस से ही सब बना है। लेकिन सारा रस झरता है उस ओंकार से और जिसको विज्ञान विद्युत की तरह जानता है, वह उसी ओंकार की उष्मा है, गरमी है; उसी ओंकार के प्राण का स्पंदन है।

दादू सबदै ही सचु पाइए, सबदै ही संतोष।

सबदै ही स्थिर भया, सबदै ही भागा सोक।।

दादू सबदै ही सचु पाइए, ...

सच के पाने का और कोई उपाय नहीं है। सोचने से न पाओगे, विचारने से न पाओगे। लाख सिर पटको, लाख पहेलियां सुलझाओ, तर्क जमाओ, सिद्धांत बनाओ, शास्त्र निर्मित करो--नहीं, सत्य को ऐसे न पाओगे। सत्य को पाने का ढंग दर्शनशास्त्र नहीं है। सत्य को पाने का ढंग साधना है, योग है, प्रार्थना है, ध्यान है, समाधि है।

कितना ही तुम सोचो, तुम ही तो सोचोगे! तुम्हारा सोचना तुमसे ऊपर नहीं जा सकता। तुम्हारे सिद्धांत तुमसे बड़े नहीं हो सकते। तुम्हारे सिद्धांत तुमसे बहुत छोटे होंगे। तुम्हारे हाथ की पकड़ में जो आ गया, वह तुम्हारे हाथ की मुट्ठी से छोटा होगा। अगर तुम्हारे परमात्मा को पकड़ना है तो रास्ता और है। तुम्हें उतना ही विराट हो जाना पड़े, तुम्हें उतना ही शून्य हो जाना पड़े, तुम्हें उतना ही विराट हो जाना पड़े, तुम्हें उतना ही शून्य हो जाना पड़े, तुम्हें इतना खाली हो जाना पड़े, इतना खाली कि अगर पूरा परमात्मा भी आए तो जगह मिले, जगह बनानी पड़े।

दादू सबदै ही सचु पाइए, ...

ओंकार जगह बनाना है। जब तुम ओंकार की धुन से भर जाते हो, तब सब शांत हो जाता है, सब शून्य हो जाता है। वही एक धुन बजती रह जाती है। जैसे मंदिर के सब यात्री जा चुके और घंटा ही बजता रह गया। हर मंदिर के द्वार पर हमने घंटा लटका रखा है। कारण है। द्वार के बाहर ही घंटा लटका रखा है। और हर मंदिर के यात्री को घंटे को बजा कर ही प्रवेश करना है। तुम यह मत सोचना कि घंटा बजाना कोई कॉलबैल जैसा मामला है कि दरवाजे पर घंटी लगी है ताकि भीतर के मालिक को पता चल जाए। वह कोई भगवान झपकी खा रहे हैं, उनको जगाने के लिए नहीं है कि शायद सो रहे हों, या शायद कोई निजी गुफ्तगूं में लगे हों, तो जरा घंटा बजा के खबर कर दें, जैसा घर में लोग खांस-खंखार के प्रवेश करते हैं। नहीं, मंदिर के द्वार पर घंटा प्रतीक है कि ध्वनि उसका द्वार है, ध्वनि से उस तक पहुंचोगे। वह जो घंटनाद है, वह तो सिर्फ सूचना है, इस बात की कि असली द्वार ध्वनि है। और अगर उसमें प्रवेश करना है तो ध्वनि को साधो, ध्वनि के योग्य बनो।

तुमने कभी देखा, शास्त्रीय संगीतज्ञ बैठता है अपने सितार को लेकर, तो लोग तो ऊब जाते हैं। अभी संगीत शुरू ही नहीं हुआ, वह साज ही बिठा रहा है, ठोका-ठाकी कर रहे हैं, तार ठीक कर रहे हैं, तबले वाला तबले को ठोंक रहा है। लोगों को बड़ी हैरानी होती है कि यह क्या कर रहे हो; यह घर से ही करके आ गए होते! यह आधा घंटा इसमें खराब करना!

लेकिन प्रतिपल साज को बिठाना पड़ता है, नहीं तो बासा हो जाता है। बासे साज पर ताजा संगीत पैदा नहीं होता। घर से बिठा कर वे भी आ सकते थे, कोई अड़चन न थी, वहीं ठोक-ठाक कर लेते; लेकिन जितनी देर में आते, जितना समय व्यतीत हो जाता, उतना ही साज बासा हो जाता। प्रतिपल ही साज को ताजा करना पड़ता है। और ताजे साज पर ही ताजा संगीत पैदा होगा। जरा भी बासा न हो जाए, इसलिए बेचारा संगीतज्ञ वहीं बैठ कर ठोक-पीट करता है। उसके पीछे राज है। और जब तार ठीक बैठ जाते हैं, तो संगीत पैदा करना बहुत कठिन नहीं है।

कहावत है कि संगीत तो कोई भी पैदा कर सकता है, लेकिन साज सिर्फ बड़ा अधिकारी पात्र ही बिठा सकता है। क्योंकि साज बिठाना बड़ी सूक्ष्म बात है। फिर तार छेड़ देना उतनी बड़ी बात नहीं है। तार बिठाना बड़ी बात है।

सारा धर्म तुम्हारी हृदय की वीणा की ठोक-ठाक है, साज बिठाना है। जिस दिन साज बैठ जाएगा, उस दिन तो बच्चा भी तार छेड़ दे तो भी संगीत उत्पन्न होने लगेगा। असली बात साज का बैठ जाना है और उस साज को बिठाने के लिए ही सारी साधना है। ओंकार के रटन को कहा जाता है। वह सिर्फ साज को बिठाना है, वह संगीत नहीं है। वह सिर्फ हथौड़ी से ठोक रहे हैं तबले को, कस रहे हैं तारों को।

ओंकार के पाठ को कहा जाता है। मैं भी तुमसे कहूंगा। एक घड़ी चौबीस घड़ी में निकाल ही लेनी चाहिए जब तुम कुछ भी न करो। खाली बैठ जाओ, ओंठ बंद कर लो, जीभ को तालू से लग जाने दो, रीढ़ सीधी हो और तुम भीतर ओंकार का नाद करने लगो। ओंकार के नाद को भीतर करने का मतलब है कि तुम ओंठ से आवाज बाहर मत निकालो। अंदर ही गुंजाओ लेकिन गुंजाओ इतने जोर से कि बाहर लोगों को सुनाई पड़े। ओंठ से न निकले, सुनाई जरूर पड़े। तुम्हारे रोएं-रोएं से निकले। तुम एक गूंज बन जाओ।

बड़ा मीठा अनुभव होता है। भीतर जैसे अमृत झरने लगता है थोड़े ही दिनों में। और यह अभी असली ओंकार नहीं है। नकली ओंकार इतना कर देता है तो असली की तो बात ही मत करो। उसकी तो कोई तुलना ही नहीं हो सकती। तुम सिर्फ आंख बंद करके, रीढ़ सीधी करके--रीढ़ सीधी इसलिए ताकि तुम्हारे भीतर सारा शून्य सीधा खड़ा हो जाए और तुम ओंकार को गुंजाने लगो।

जब श्वास बाहर जाए तो तुम ओंकार की ध्वनि करो--ओम... ओम। जब श्वास भीतर जाएगी तब तो ध्वनि न कर पाओगे। तो एक रिदिम, एक लय पैदा हो जाएगी। श्वास बाहर जाएगी। तुम श्वास को ओंकार की ध्वनि से भर दो। फिर श्वास भीतर जाएगी, शून्य रहेगा। फिर श्वास बाहर जाएगी, फिर ओंकार की ध्वनि करो इतने जोर से कि बाहर कोई गुजरता हो तो सुनाई पड़े। जैसे एक मधुमक्खियों का जत्था जा रहा हो तो एक गूंज मालूम पड़ती है, ऐसी ही गूंज बाहर मालूम पड़ेगी। और वह गूंज तुम्हारे शरीर को भी स्वस्थ करेगी, तुम्हारे बिखरे मन को बांधेगी और तुम्हारे भीतर एक अपूर्व शांति का जन्म होगा और एक मस्ती छा जाएगी।

ध्वनि की अपनी सुरा है। इसीलिए तो संगीत सुनते-सुनते तुम्हारा सिर हिलने लगता है, जैसे शराबी का हिल रहा हो।

मैंने सुना है, लखनऊ में वाजिद अली के दिनों में ऐसा हुआ, एक बड़ा संगीतज्ञ आया और उसने वाजिद अली से कहा कि मैं संगीत तो प्रस्तुत करूंगा, लेकिन शर्त है एक--कोई सिर न हिलाए। वाजिद अली तो पागल था ही। उसने कहाः तुम फिकर मत करो। जो सिर हिलाएगा, कटवा देंगे। गांव में डुंडी पीट दी गई कि जिसने भी सिर हिलाया, उसका कट जाएगा। इसलिए अगर सिर हिलाना हो तो आना ही मत।

जहां सुनने दस हजार लोग आए होते--क्योंकि बड़ा ख्यातिनाम संगीतज्ञ था--वहां मुश्किल से सौ-पचास आदमी आए और वह भी ऐसे आदमी जिसको अपने पर भरोसा है। हठयोग के साधक होंगे या इस तरह के लोग, कसरती, पहलवान, जिनको कि पक्का है भरोसा कि सिर न हिलने देंगे। क्योंकि खतरा है, वाजिद अली पागल है। मक्खी सिर पर बैठ जाए और तुम हिला दो तो वह फिर सुनेगा ही नहीं कि हमने संगीत के लिए नहीं हिलाया था।

तो लोग बिल्कुल सध कर बैठे, बुद्ध की प्रतिमाओं की तरह बैठे। संगीत शुरू हुआ। घड़ी भी न बीती होगी। कुछ सिर हिलने लगे, बेतहाशा हिलने लगे। वाजिद अली तो घबड़ाया खुद भी। उसने सोचा कि वह तो नाहक हत्या हो जाएगी। अब इन नासमझों को कहलवा दिया, डुंडी पिटवा दी, फिर भी आ गए हैं, और सामने ही बैठे हैं और संगीतज्ञ को भी दिखाई पड़ रहा है।

उसने नंगी तलवारें लिए आदमी खड़े कर रखे थे। संगीत पूरा हुआ। वे आदमी पकड़ लिए गए। और वाजिद अली ने कहा संगीतज्ञ को, बोलो, कटवा दूं इनके सिर? उसने कहा कि नहीं, किसी और कारण से मैंने ऐसा कहा था। बाकी सब को विदा कर दो, अब इनके साथ रात बिताऊंगा। यही असली हकदार है सुनने के।

क्योंकि जिनके भीतर संगीत से शराब पैदा न हो जाए, वे भी कोई सुनने वाले हैं? यह तो परीक्षा थी सिर्फ। क्योंकि अब ये शराब की हालत में हैं, अब ये होश में नहीं हैं। जब तक होश था, तब तक तो ये भी साधे रहे। जब बेहोशी आ गई, तब ये न साध पाए। उन लोगों ने भी कहाः हमने सिर हिलाए नहीं, सिर अपने से हिले। हम तो अपनी तरफ से न हिलाने की ही जिद किए थे। हमने तो कई बार रोकने की भी कोशिश की, मगर परवश! सिर था कि हिले जा रहा है, जैसे हमारा हिस्सा ही न हो।

तुमने शराबी को चलते देखा है? वह काफी सम्हल कर चलता है। कोई आदमी इतना सम्हल के नहीं चलता, जितना शराबी सम्हल के चलता है। क्योंकि उसको पता है कि वह डांवाडोल हो रहा है। वह बहुत सम्हल के चलता है, लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है?

संगीत की अपनी सुरा है; वैसी सूक्ष्म कोई भी सुरा नहीं। और सब शराबें स्थूल हैं।

अगर तुमने अपने भीतर ओंकार के नाद को गुंजाया--और ध्यान रखना कि यह तुम्हारा नाद है; अभी तुम्हें असली नाद का पता ही नहीं है--तो भी तुम्हारे भीतर एक मस्ती पैदा होगी; तुम एक मदमस्ती में जीने लगोगे। तुम चलोगे और ढंग से! स्फूर्ति और होगी! उठोगे और ढंग से! आंखों में एक नशा छाया रहेगा, जैसे जिंदगी में एक पहली दफा उत्सव की घड़ी आई है।

अगर तुम इस तरह ओंकार की ध्वनि करते रहो, करते रहो, करते रहो, किसी दिन अचानक तुम पाओगे कि तुम्हारी धुन तो जारी है ही, एक और धुन तुम्हारे भीतर पैदा हो रही है। यह उसी दिन पैदा होती है जिस दिन तुम्हारी वीणा पूरी कस जाती है और तैयार होती है; साज राजी होता है। उस दिन तुम पाओगे, एक धुन तो तुम कर रहे हो, जो अब कुछ भी नहीं है; एक फीका स्वर है, कार्बनकॉपी है। असली धुन अब पैदा हो रही है। तब तुम अपनी धुन को बंद कर देना। तब तुम सुनने वाले बन जाना। अब तक तुम कर्ता थे; अब तुम सुनने वाले बन जाना; अब तुम आंखें गड़ा लेना भीतर। अब तुम प्राणों को थाम लेना। क्योंकि भीतर जो घट रहा है, वह अपूर्व है; वह अतुलनीय है; उसकी कोई उपमा नहीं है। भीतर अमरस की धार बहने लगेगी। रोआं-रोआं किसी अपूर्व प्रकाश से भर जाएगा। अंधकार गया! दुर्दिन गए; महासुख बरसेगा! मिलन का क्षण करीब आ गया।

ओंकार तुम शुरू करो। मगर तुम खींचे मत जाना और प्रतीक्षा करना उस दिन की जिस दिन भीतर का ओंकार फूटने लगे। उस दिन तुम जिद्द मत करना अपने ओंकार को थोपने की। उस दिन तुम बिल्कुल चुप हो जाना। तुम्हारा ओंकार तो सिर्फ आयोजन था, ताकि रास्ता बन जाए उस ओंकार के बहने के लिए; ताकि तुम्हारे यंत्र में मार्ग बन जाए उस ओंकार को

झेलने के लिए। तुम्हारा ओंकार तो सिर्फ पूर्व तैयारी थी, रिहर्सल था; असली नाटक तो तब शुरू होता है जब तुम्हारा ओंकार तो गया और उसका ओंकार शुरू हुआ--एक ओंकार सतनाम!

दादू सबदै ही सचु पाइए, ...

और उस घड़ी में ही सत्य से मिलन है।

... सबदै ही संतोष।

और संतोष उस सत्य की छाया है। उसके पहले तुम लाख संतोष की बातें करों, तुम्हारा संतोष सांत्वना है, संतोष नहीं। और सांत्वना को भूलकर संतोष मत समझना। वह तो बड़ी नपुंसक स्थिति है। सांत्वना नपुंसक स्थिति है; संतोष महा ऊर्जा से भरी हुई घड़ी है।

तुम भी सोचते हो कि संतोष है। तुम भी कहते हो कि जो है, सब ठीक है; लेकिन जैसा तुम कहते हो, जो है सब ठीक है, उसमें भी शिकायत मौजूद है। जरा भीतर झांक कर देखोगे तो पाओगे, कुछ भी ठीक नहीं हो। कह रहे हैं--मन को समझा रहे हैं। न कहेंगे तो कोई हटने वाला नहीं हैं। दुख और नाहक फजीहत होगी, और लोग भी जान लेंगे। तुम किसी तरह झूठी मुस्कुराहट अपने दुख के सरोवर के चारों तरफ बांध रखते हो। किसी तरह अपने को सम्हाले रखते हो कि सब ठीक है।

कुछ भी ठीक नहीं है। ठीक हो भी नहीं सकता। सत्य के बिना कभी कुछ ठीक हुआ भी नहीं है। इसलिए मैं नहीं कहता कि तुम संतोष साधो, मैं तो कहता हूं, तुम ओंकार साधो। ओंकार के साधने से सत्य आएगा।

सत्य की छाया है संतोष; सत्य के पीछे चला आता है। जिसको सत्य से मिलन हो गया वह संतुष्ट हो जाता है। उसके पहले संतुष्ट हो भी कैसे सकते हो? और दुर्भाग्य होगा अगर संतुष्ट हो जाओ। क्योंकि अगर संतुष्ट हो गए तो फिर सत्य को कौन खोजेगा? फिर तो खोज ही बंद हो गई।

इसलिए परमात्मा की बड़ी कृपा है कि सत्य के पहले वह तुम्हें संतुष्ट नहीं होने देता। अगर तुम संतुष्ट हो गए हो तो यात्रा ही समाप्त हो गई। धर्म संतोष नहीं है; धर्म महा असंतोष है, असंतोष की प्रबल ज्वाला है। अग्नि की भट्टी की तरह तुम जलोगे तुम असंतोष में और तभी कभी यात्रा पूरी हो सकती है। तुम जल्दी संतोष की करते हो।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, जल्दी संतोष मिल जाए। संतोष इतनी जल्दी मिल जाए तो दुर्भाग्य होगा। फिर तुम वहीं बैठ रहोगे जहां हो, फिर तुम आगे न बढ़ोगे। तो मैं तुमसे कहता हूं, बाहर की चीजों में चाहे संतोष साध लेना; भीतर के जगत में संतोष मत साधना।

ठीक है मकान छोटा है, समझा लेना कि ठीक है, चल जाएगा काम, क्योंकि ऐसे तो बड़े से भी नहीं चलता। बड़ा भी मिल जाएगा तो भी छोटा ही रहेगा। जो भी मिल जाए, वह छोटा हो जाता है। असल में छोटे की एक ही परिभाषा है--जो तुम्हारे पास है, वह छोटा है। जो दूसरे के पास है, वह बड़ा है। और तो कोई परिभाषा नहीं है छोटे की। इसलिए जो भी मिलेगा, छोटा हो जाएगा।

ठीक है, बाहर के काम में संतोष साध लेना; लेकिन भीतर के जगत में जब तक परमात्मा न मिल जाए, उससे कम पर राजी मत होना। उससे कम पर अगर तुम राजी हो गए तो चूक जाओगे।

तुमने पढ़ी है कथा? नचिकेता को उसके पिता ने भेज दिया यम के द्वार पर। यम तीन दिन बाद आया। यम की पत्नी ने बहुत कहा कि तू कुछ भोजन कर ले, विश्राम कर ले। उसने कहा कि नहीं। पहले तो जिस काम से आया हूं, वह निपटाऊं। अभी कैसा विश्राम? अभी कैसा भोजन? कहीं भोजन, विश्राम में भूल न जाऊं, पहले तो मिलना है।

द्वार पर ही नचिकेता को यम मिला। इस छोटे से लड़के की ऐसी अदम्य जिज्ञासा देख कर यम का हृदय भी पसीज गया। वह सबसे कठिन हृदय होना चाहिए, क्योंकि मृत्यु का देवता है यम। वह भी पसीज गया। उसने कहाः तू मांग ले--घोड़े-हाथी, धन-दौलत, हीरे-जवाहरात। नचिकेता ने कहाः इनके मिल जाने से तृप्ति होगी? यम मुश्किल में पड़ा। उसने

कहाः तू साम्राज्य मांग ले सारी पृथ्वी का, चक्रवर्ती बन जा। पर नचिकेता ने कहाः मेरे सवाल का जवाब दें। उससे मैं संतुष्ट हो जाऊंगा?

यम झूठ न बोल सका। जिज्ञासा प्रबल हो, मृत्यु भी झूठ नहीं बोल सकती। जिज्ञासा गहन हो तो यम भी धोखा नहीं दे सकता। इस छोटे बच्चे को धोखा देना मुश्किल था। उसने कहा कि नहीं, यह तो मैं भी न कह सकूंगा। नहीं, इससे संतोष तो न मिलेगा। तू अनंतकाल तक जीवन मांग ले। तुझे जितना जीना हो उतना जीना।

पर वह नचिकेता अपनी जिद पर अड़ा रहा। उसने कहा कि उससे क्या होगा? एक दिन तो फिर आखिर मैं मरूंगा क्या इससे अमृत मिल जाएगा--लंबा जीवन? अमृत का मिलन हो जाएगा? संतुष्ट हो जाऊंगा?

यम ने कहाः तू जिद्दी है। नहीं, उससे भी संतोष न मिलेगा?

तो नचिकेता ने कहाः जब आप दे ही रहे हैं वरदान ऐसे उदार हृदय से, तो मुझे वही रास्ता बता दें जिससे अमृत मिल जाए, और संतुष्टि हो जाए।

नचिकेता की तरह बैठे रहना द्वार पर जीवन के, जब तक कि संतुष्टि न मिल जाए। तब तक जीवन कुछ भी दे--कई भुलावे देगा जीवन--कहना कि ठीक है सब, धन्यवाद! पर अपने भुलावे अपने पास रखो। मेरे अग्नि मेरे पास, मेरी प्यास मेरे पास, मेरी जलन मेरे पास, मेरा विरह मेरे पास, जलूंगा; लेकिन अब वर्षा तो वही चाहिए जो आखिरी हो। इन छोटी-मोटी वर्षाओं से क्या होगा? फिर आग पैदा होगी, फिर जलूंगा। आखिरी वर्षा चाहिए।

इसलिए मैं कहता हूं, धर्म असंतोष है, महा असंतोष है, दिव्य असंतोष है--डिवाइन डिसकंटेंटमेंट। और जो उस असंतोष से गुजरता है, वही किसी दिन संतोष को उपलब्ध हो पाता है लेकिन संतोष सीधा नहीं मिलता। वह तुम्हारी चेष्टा से नहीं मिलता।

दादू सबदै ही सचु पाइए, सबदै ही संतोष।

सबदै ही स्थिर भया, सबदै भागा सोक।।

उस ओंकार की ध्वनि में ही सत्य से मिलन होता है, संतोष आ जाता है। उस ओंकार की धुन में ही स्थिरता आती है, स्थिर हो जाता है प्राण, सारी चंचलता खो जाती है, सारी भाग-दौड़, आपा-धापी मिट जाती है, और उसी क्षण--सबदै ही भागा सोक--और सारा दुख तिरोहित हो जाता है।

जानने वालों की दृष्टि में चंचलता दुख है। जानने वालों की दृष्टि में थिर हो जाना सुख है। जो थिर है वह सुखी है। जो दौड़ रहा है, भाग रहा है, वह दुखी है। तुम सोचते हो उलटा। तुम्हारा तर्क यह है कि दुखी हूं, इसलिए भाग रहा हूं। और तुम किसी को बैठे देखते हो, किसी बुद्ध को बोधिवृक्ष के नीचे, तुम कहते हो, सुखी है इसलिए बैठा है।

मामला उलटा है। यह बैठा है इसलिए सुखी है। तुम दौड़ रहे हो इसलिए दुखी हो। तुम भी बैठ कर देखो। तुम कहते हो, बैठूं कैसे? , जब तक सुख न मिलेगा हम बैठेंगे न। तब तो सुख कभी मिलेगा नहीं, क्योंकि वह बैठने से मिलता है। तुम कहते हो, अभी अगर दौड़-धूप बंद कर दी तो क्या होगा? अभी तो बहुत सुख बाकी पड़े हैं। दुख ही दुख जीवन में पाए हैं; थोड़ा तो सुख ले लेने दो; थोड़ा तो दौड़ लेने दो, थोड़ा तो कुछ पा लेने दो--फिर बैठ जाएंगे।

किसी ने कभी दौड़ कर कुछ पाया? इतिहास में कोई सबूत है, एकाध भी? किसी ने कभी दौड़ कर कुछ नहीं पाया। दौड़ कर खोया भला, पाया नहीं। जिन्होंने पाया बैठ कर पाया। बैठ जाने की कला ही बड़ी भारी कला है। बस तुम बैठ जाओ। दौड़ो मत। थिर हो जाओ। उसको कृष्ण ने गीता में स्थितप्रज्ञ कहा है--जिसकी प्रज्ञा ठहर गई; ऐसे ठहर गई जैसे किसी भवन में जिसके द्वार-दरवाजे बंद हों, हवा के झोंके न आते हों और दीये की ज्योति थिर होकर जलती है, कंपती नहीं--ऐसी जिसकी प्रज्ञा ठहर गई।

सबदै ही स्थिर भया, सबदै ही भागा सोक।

दादू सबदै ही मुक्ता भया, ...

शब्द से ही मुक्त हुआ।

... सबदै समझै प्राण।

और शब्द से ही जीवन का रहस्य जाना। सबदै ही सूझै सबै, ... शब्द से ही आंख खुली, सूझना शुरु हुआ। ... सबदै सुरझै जाण। और शब्द से ही जितनी उनझनें थीं सुलझीं। ये शब्द ओंकार की तरफ इशारा है। क्यों नानक, दादू, कबीर शब्द कहते हैं। कारण हैं। वे कहते हैं कि ओंकार सीधा-सीधा कहना ठीक नहीं। वह बड़ी नाजुक बात है। उसे इशारे से कहते हैं।

यहूदियों में एक पुराना रिवाज है कि परमात्मा का नाम मत लो, क्योंकि नाम लेना बहुत सीधा हो जाता है शोभा नहीं देता। भारत में रिवाज हैं कि पत्नी पति का नाम नहीं लेती। शोभा नहीं देता। थोड़ा सा बेहूदा लगता है। इतना सीधा? न, प्रेम नाजुक बात है। पत्नी पति का नाम नहीं लेती। भक्त भगवान का नाम नहीं लेता।

संत उसको बार-बार शब्द कहते हैं, इशारा करते हैं।

सबदै ही सूझै सबै, सबदै सुरझै जाण।

पहली किया आप थैं, उतपत्ती ओंकार।

दादू कहते हैंः परमात्मा से जो पहली होने की घटना घटी, वह है ओंकार, जो पहला उदघोष हुआ, वह है ओंकार, जो पहली सृष्टि हुई, वह है ओंकार; जो पहली लहर उठी, वह है ओंकार।

ध्यान रखना, परमात्मा में जो पहली लहर है, वही तुममें अंतिम लहर होगी, अगर परमात्मा में जाना है। ओंकार पहली लहर है परमात्मा की अर्थात, हुआ, परमात्मा संसार में आया; स्त्रष्टा सृष्टि बना, लहर उठी। अगर तुम्हें वापस जाना है तो उसी मार्ग से लौटाना होगा। ओंकार अंतिम बात होगी तुम्हारे जीवन में। उसके आगे परमात्मा है। उसके आगे फिर कुछ भी नहीं है। जिस दिन ओंकार भी शांत हो जाएगा, और महाशून्य रह जाएगा, उस दिन सिर्फ परमात्मा रह जाएगा; उस दिन तुम परमात्मा हो।

पहली किया आप थे, उतपत्ती ओंकार।

ओंकार थैं उपजैं, पंच तत्त आकार।।

और दादू कहते हैं कि फिर ओंकार से पांच महा तत्व पैदा हुए--पृथ्वी, आकाश, जल, अग्नि इत्यादि। सारा संसार फिर उसी शब्द की, अलग-अलग जोड़ों से निर्मित हुआ।

दादू सबद बाण गुरु साध के, दूरि दिसंतर जाइ।

जेहि लागै सो उबरै, सूते लिए जगाइ।।

दादू सबद बाण गुरु साध के, ...

और उसी ओंकार को गुरु अपनी प्रत्यंचा पर साधता है। उसी ओंकार को गुरु बाण की तरह अपने जीवन की प्रत्यंचा पर साधता है, खींचता है।

दादू सबद बाण गुरु साध के, ...

और फिर कोई भी दिशा, और कितनी ही दूरी हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर शिष्य राजी है तो कहीं भी हो, गुरु का बाण उसे छेद देता है।

... दूरि दिसंतर जाइ।

क्योंकि उस ओंकार की ध्वनि के लिए न तो कोई दिशा है, न कोई दूरी है। अगर शिष्य खुला है और राजी है, और हृदय के वातायन उसने खोल रखे हैं तो तीर लग जाएगा। तीर पहले तो पीड़ा देगा, पहले तो मारेगा, फिर जिलाएगा। और फिर ऐसा जिलाएगा कि फिर कोई मरना नहीं होता। तो वह तीर मृत्यु भी है और पुनर्जीवन भी।

दादू सबद बाण गुरु साध के, दूरि दिसंतर जाइ।

जेहि लागै सो उबरै, सूते लिए जगाइ।।

जिसको लग जाता है बाण वह उबर जाता है।

----सुते लिए जगाइ।

इसे थोड़ा समझें। जो सो रहे हैं, उन्हें बाण मार कर जगा लिया।

दो बातें हैं; अगर शिष्य राजी न हो और गुरु बाण मारे तो ज्यादा--से ज्यादा सोए को जगा सकता है। अगर शिष्य राजी हो और गुरु बाण मारे तो उबार ले सकता है, परम मुक्ति घटित हो सकती है। अगर शिष्य राजी न हो, तो फिर सो जाएगा। अगर शिष्य राजी हो तो फिर कोई सोने का उपाय न रहा। वही मुक्ति का अर्थ है। मुक्ति का अर्थ है, ऐसे जागे ऐसे जागे कि फिर कोई सोना न रहा, फिर सोने का कोई उपाय न रहा!

तो बहुत बार गुरु तब भी बाण मारता है जब तुम राजी नहीं हो, तब तुम्हें सिर्फ जगाता है। उतना तो गुरु अपनी तरफ से भी कर सकता है कि तुम्हें थोड़ा हिला दे, कंपा दे और जगा दे। अगर तुम उस जागने का उपयोग कर लो और राजी हो जाओ तो दूसरी घटना भी घट सकती है। लेकिन वह तुम पर निर्भर है।

कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे को उसकी इच्छा के खिलाफ मुक्त नहीं कर सकता। और स्वभावतः यह ठीक भी है। क्योंकि अगर कोई तुम्हें मुक्त भी जबरदस्ती कर दे तो वह मुक्ति ही क्या रही! अगर तुम मुक्त भी तुम्हारी इच्छा के खिलाफ किए जा सको तो वह तो गुलामी हो गई।

तो मुक्ति की परम घटना तुम्हारे राजी होने से ही घटती है। लेकिन तुम्हें जगाया जा सकता है, तुम्हें हिलाया जा सकता है, तुम्हें चौंकाया जा सकता है। और अगर तुम थोड़े भी समझदार हो तो उस चौंकाई हुई हालत का तुम उपयोग कर लोगे। अगर तुम बिल्कुल नासमझ हो तो तुम फिर करवट लेकर सो जाओ और शायद गुरु को एक गाली भी दे दोगे कि क्यों नाहक नींद खराब कर रहे हो; अपना काम देखो और हमें सोने दो।

दादू सबद बाण गुरु साध के, दूरि दिसंतर जाइ।

जेहि लागै सो ऊबरै, सूते लिए जगाइ।।

सबद सरोवर सूभर भरया, हरिजल निर्मल नीर।

वह जो शब्द का सरोवर है, वह लबालब भरा है परमात्मा के जल से।

... हरिजल निर्मल नीर।

दादू पीवै प्रीति सौं, तिनकै अखिल सरीर।।

और जो उसे प्रेम से पी लेते हैं, वे अखिल ब्रह्म के साथ एक हो जाते हैं।

उस जल को पीने की कला प्रेम है। तुम उसे अपनी प्यास के कारण भी पी सकते हो; लेकिन तब परमात्मा का तुम उपयोग कर रहे हो। तुम उसे प्रेम से भी पी सकते हो, तब तुम परमात्मा को समर्पित हो रहे हो।

इसे थोड़ा समझ लो। तुम ऐसी भी प्रार्थना कर सकते हो कि तुम चाहो कि परमात्मा तुम्हारे काम आ जाए। तब तुम्हारी जरूरत महत्वपूर्ण है, परमात्मा गौण है। और जिसने परमात्मा को गौण रखा, वह नास्तिक है। और तुम इसलिए भी प्रार्थना कर सकते हो, क्योंकि परमात्मा की प्रार्थना आनंद है। वह तुम्हारा प्रेम है। तुम इसलिए नहीं कि कुछ चाहते हो, इसलिए नहीं कि कुछ हो जाएं; सिर्फ इसलिए प्रार्थना करते हो जैसे कि कोई प्रेम करता है।

तुमने कभी पूछा कि प्रेम किसलिए करते हो? तुम कहोगे, बस प्रेम प्रेम के लिए, प्रार्थना प्रार्थना के लिए, ध्यान ध्यान के लिए।

दादू कहते हैंः दादू पीवै प्रीति सौं, ... जो प्रेम से पीता है--प्रेम का मतलब ही यह है कि जो साधन की तरह नहीं पीता, बल्कि साध्य की तरह पीता है। ... तिनके अखिल सरीर। वह ब्रह्मांड के साथ एक हो जाता है। उसकी सब दूरी मिट जाती है, फासले गिर जाते हैं। वह एक बूंद की तरह उस सागर में उतर जाता है। वह सागर पूरा का पूरा उस बूंद में उतर जाता है।

कहां से शुरू करो? यात्रा की शुरुआत है तुम्हारे ओंकार के नाद से। तुम्हारा ओंकार का नाद सिर्फ तैयारी है, पूर्व तैयारी है। फिर जब असली नाद उठने लगे और तुम्हारी वीणा उस नाद से थिरकने लगे, तब अपने हाथ खींच लेना, तब तुम एक अनूठे अदृश्य अनाहत संगीत से भर जाओगे। तुम नादब्रह्म से भर जाओगे। उस भरी हुई अवस्था में नशा होगा एक।

उमर खय्याम उसी शराब की बात कर रहा है। वह कोई इस संसार की शराब की बात नहीं कर रहा है। तब तुम मदमाते जीओगे। तब तुम्हारे उठने बैठने में रस छलकेगा। तुम्हारे पास जो आ जाएगा, तुम्हारी गंध जिसको छू जाएगी, वह नशे में डूब जाएगा और नाचने लगेगा।

उस मदमस्त दशा को ही जो पा लेता है उसे सत्य की प्रतीति होनी शुरू होती है। उस बेहोशी में ही मिलता है सत्य, क्योंकि वह बेहोशी ही सबसे बड़ा जागरण है। और जिसको मिला सत्य--संतोष सत्य की छाया है--उसके जीवन में परम संतोष छा जाता है।

परमात्मा को साध्य समझना, साधन नहीं। प्रेम से पीना, कारण से नहीं। लाभ की दृष्टि से मत सोचना, नहीं तो वंचित रह जाओगे। उपयोगिता का भाव ही मत ले जाना वहां। जो उपयोगिता से चलता है, वह हमेशा बाजार में पहुंच जाएगा, मंदिर कभी नहीं आ सकता। उपयोगिता के सभी रास्ते बाजार की तरफ जाते हैं। वहां तो प्रेम के दीवानों की बस्ती है। मंदिर की तरफ आना हो तो पागल प्रेमियों की तरफ आना होता है।

दादू पीवै प्रीति सौं, तिनकै अखिल सरीर।

सबद सरोवर सुभर भरया, हरिजल निर्मल नीर।।

वह सरोवर तुम्हारी प्रतीक्षा करता है। जिस क्षण तुम राजी हो जाओगे, अचानक पाओगे, आंख के सामने ही सरोवर है। जिस क्षण तुम्हारे भीतर का अनाहत बज उठेगा, अचानक पाओगे, सब तरफ वही सरोवर है। हैरान होओगे, इतने दिन तक कैसे चूकते रहे। मछली सागर में प्यासी!

कबीर कहते हैंः एक अचंभा मैंने देखा! वह अचंभा यह है कि मछली सागर में प्यासी है। वह अचंभा तुम्हारे संबंध में है। वह अचंभा मैं भी देखता हूं। चारों तरफ सरोवर भरा है। तुम सरोवर में ही पैदा हुए हो। तुम्हारे रोएं-रोएं में सरोवर की तरंगें हैं। तुम सरोवर हो और प्यासे!

आज इतना ही।

विज्ञान धर्म और कला

पहला प्रवचन

मेरे प्रिय आत्मन्!

विज्ञान है सत्य की खोज, धर्म है सत्य का अनुभव, कला है सत्य की अभिव्यक्ति। विज्ञान प्राथमिक है, पहला चरण है। और विज्ञान चाहे तो बहुत देर तक बिना धर्म के जी सकता है। क्योंकि सत्य की खोज ही उसका लक्ष्य है। मैंने कहा, बहुत देर तक बिना धर्म के जी सकता है। और आज तक बिना धर्म के विज्ञान जीया है। न केवल बिना धर्म के बल्कि विज्ञान धर्म को अस्वीकार करके जीया है। जी सकता है। कोई रास्ता चाहे तो बिना मंजिल के भी हो सकता है। लेकिन विज्ञान जैसे ही विकसित होगा--मनुष्य सिर्फ सत्य को जानना ही नहीं चाहेगा--सत्य होना भी चाहेगा। इसलिए बहुत देर तक विज्ञान भी धर्म के बिना नहीं रह सकता है। और उसके न रहने की संभावना रोज-रोज प्रकट होती चली जाती है।

विगत सदी के बड़े से बड़े वैज्ञानिक--चाहे आइंस्टीन हो, चाहे मैक्स प्लांक हो, चाहे एडिंग्टन हो, चाहे कोई और हों। वे सारे लोग जीवन के अंतिम क्षणों में धर्म की बात करते हुए पाए गए हैं। यह बड़ी कीमती संभावनाएं हैं। आने वाली सदी में विज्ञान रोज-रोज धार्मिक होता चला जाएगा। क्योंकि कोई रास्ता मंजिल के बिना रह सकता है, लेकिन मंजिल के बिना कोई रास्ता पूरा नहीं हो सकता।

और मंजिल के बिना अगर कोई रास्ता हो तो अर्थहीन भी होगा, असंगत भी होगा, अब्सर्ड भी होगा। क्योंकि जो रास्ता किसी मंजिल पर न पहुंचाता हो, उसको रास्ता कहना ही बहुत कठिन है। एक दिन रास्ते को मंजिल भी स्वीकार करनी पड़ती है। और कोई साधन साध्य के बिना अर्थपूर्ण नहीं हो पाता है।

इसलिए पश्चिम में जहां विज्ञान का गहरा प्रभाव है, रोज-रोज अर्थहीनता, मीनिंगलेसनेस का भी विस्तार होता चला गया है।

विज्ञान को धर्म होना पड़ेगा।

धर्म का अर्थ हैः सत्य के साथ एक होने की आकांक्षा, सत्य का अनुभव। आदमी इतने से तृप्त नहीं हो सकता कि सत्य क्या है। उसकी तृप्ति तो पूरी तभी होती है जब वह सत्य के साथ एक हो जाए। हम यही न जानना चाहेंगे कि प्रेम क्या है; हम प्रेम होना भी चाहेंगे। हम यही न जानना चाहेंगे कि धन क्या है; हम धनी होना भी चाहेंगे। हम यही न जानना चाहेंगे कि सत्य क्या है; हम सत्य होना भी चाहेंगे। क्योंकि जानना सदा होने के लिए एक चरण--उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इसलिए दूसरा चरण, मनुष्य की खोज का धर्म है।

धर्म चाहे तो बहुत दिन तक बिना कला के जी सकता है। जैसा मैंने कहा कि विज्ञान चाहे तो बिना धर्म के जी सकता है। धर्म चाहे तो बहुत दिन तक बिना कला के जी सकता है। लेकिन जब धर्म की बहुत गहरी अनुभूति होगी, तो जो हमने जाना है वह प्रकट भी होना चाहेगा। सिर्फ जो हम हो गए हैं, उतना ही काफी नहीं है। जो हम हो गए हैं वह अभिव्यक्त भी होना चाहेगा। हम न केवल जानना चाहेंगे कि प्रकाश कैसे जन्मता है, हम प्रकाश होना भी चाहेंगे। लेकिन हम प्रकाश होने से चुप न होंगे; हम प्रकाश की किरणों को दूर-दूर तक फैलाना भी चाहेंगे।

जिस दिन धर्म की अनुभूति इतनी प्रगाढ़ होती है कि ओवरफ्लोइंग शुरु हो जाए, जिस दिन धर्म की अनुभूति इतनी गहरी होती है कि हमसे बाहर बहने लगे, चारों तरफ फैलने लगे, उस दिन कला का जन्म होता है। धर्म चाहे तो बहुत देर तक कला से बच सकता है, लेकिन बहुत ज्यादा देर तक नहीं बच सकता। अनुभूति जब गहरी होगी, तो बंटना चाहेगी। जब बादल बहुत सघन हो जाएंगे, तो बरसना चाहेंगे। और जब नदी में वेग आएगा, तो वह सागर की तरफ दौड़ना चाहेगी। और जब प्रेम हमारे हृदय में भर जाएगा, तो वह चारों तरफ बरसना चाहेगा। और जब बीज पूर्ण विकसित होगा, तो फूट कर अंकुर बनना चाहेगा।

सत्य की अनुभूति पर ही बात नहीं रुक जाती; सत्य की अभिव्यक्ति भी अनिवार्य है। और बड़े आश्चर्य की बात है कि जितना सत्य अनुभव करने से मिलता है, उससे हजार गुना सत्य अभिव्यक्त करने से वापस लौट आता है। क्योंकि जो हम देते हैं, वह हमें वापस हजार गुना होकर मिलने लगता है। जिस चीज में हम दूसरों को साझीदार बनाते हैं, जिस चीज में हम दूसरों को बंटवारे में मित्र बनाते हैं, वह चीज हम पर लौटने लगती है। सत्य की अनुभूति अंततः सत्य की अभिव्यक्ति बनती है।

विज्ञान पहला चरण है मनुष्य की यात्रा का, धर्म दूसरा चरण है, कला उसका अंतिम चरण है। लेकिन यह बड़ी कठिन बात है, जैसा मैं कह रहा हूं। इतिहास में उलटा हुआ है। इतिहास में ऐसा हुआ कि धर्म पहले आया, कला बाद में आई, और विज्ञान सबसे बाद में आया। इसलिए कुछ और बातें भी आपसे कहना चाहूंगा। जो धर्म विज्ञान के पहले आ जाएगा, वह अवैज्ञानिक होगा, सुपरस्टीटस होगा। जो धर्म मनुष्य के पास विज्ञान के पहले आ जाएगा, वह अंधविश्वास के निकट होगा, वैज्ञानिक नहीं हो सकता।

इसलिए जो धर्म विज्ञान के पहले पृथ्वी पर आ गया, वह जिन्होंने अनुभव किया होगा, बहुत थोड़े से लोगों ने--कोई जीसस, कोई कृष्ण, कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कनफ्यूशियस, दस-पांच लोगों के जीवन में तो वह गहरे अर्थों में था, लेकिन हम सबके जीवन में वह अंधविश्वास से ज्यादा नहीं हो सकता था। विज्ञान के ठीक विकास के बाद जो धर्म आएगा, वही वैज्ञानिक हो सकता है। यही वजह है कि दुनिया में होना तो चाहिए था एक धर्म, लेकिन हो गए अनेक।

बीमारियां अनेक हो सकती हैं, स्वास्थ्य अनेक नहीं होते। मैं बीमार पडूंगा, तो अपने ढंग से; आप बीमार पड़ेंगे, तो अपने ढंग से। और बीमारियों के हजारों नाम हैं--कोई टी.बी. से बीमार पड़ता है, कोई कैंसर से बीमार पड़ता है। लेकिन जब आप स्वस्थ हो जाते हैं तो स्वास्थ्य का कोई भी नाम नहीं है। तब आप यह नहीं कह सकते कि मैं किस ढंग से स्वस्थ हो गया हूं। आप सिर्फ स्वस्थ हो जाते हैं।

अधर्म हजार हो सकते हैं, धर्म हजार नहीं हो सकते। अधर्म बीमारी है, धर्म स्वास्थ्य है। इसलिए धर्म तो एक ही हो सकता है, लेकिन एक नहीं हो सका। क्योंकि विज्ञान के पहले जो भी आएगा वह अंधविश्वास होगा, वह विज्ञान नहीं बन पाता है।

अब पहली बार पृथ्वी पर धर्म के अवतरण की समुचित व्यवस्था हो पा रही है। और भविष्य में जो धर्म अवतरित होगा--वह हिंदू नहीं होगा, वह मुसलमान नहीं होगा, वह जैन नहीं होगा, वह ईसाई नहीं होगा--वह सिर्फ धर्म होगा। और जिस दिन मनुष्य-जाति पर सिर्फ धर्म का अवतरण होगा, उस दिन ही हम धर्म के नाम पर हो रही नासमझियों से मुक्त हो सकेंगे, उसके पहले नहीं हो पाएंगे।

आश्चर्य की बात है कि साधारण धार्मिक आदमी हिंदू-मुसलमान होता है, सो ठीक। संन्यासी भी हिंदू, मुसलमान, ईसाई और जैन होता है? कम से कम संन्यासी तो सिर्फ धार्मिक हो? वह भी संभव नहीं हो पाया है। आश्चर्यजनक है यह बात! असल में समाज के रोग संन्यासी को भी पकड़ लेते हैं। समाज की सीमाएं और विशेषण संन्यासी को भी घेर लेते हैं। समाज की गुलामियां और समाज के बंधन संन्यासी को भी जकड़ लेते हैं।

धर्म पैदा हुआ। कुछ थोड़े से व्यक्तियों के जीवन में उसकी अनुभूति गहरी थी। लेकिन समूह के जीवन में वह तब तक नहीं पहुंच सकता था जब तक कि विज्ञान ठीक भूमि को साफ न कर दे। अब विज्ञान ने भूमि ठीक से साफ कर दी है। और अब धर्म अवैज्ञानिक ढंग से नहीं स्वीकृत होगा, इसीलिए बड़ी कठिनाई पैदा हो रही है।

जो लोग अंधविश्वासों को पकड़े हुए हैं, वे सोचते हैं कि सारी दुनिया अधार्मिक होती जा रही है। वे बड़ी भ्रांति में हैं। सारी दुनिया अधार्मिक नहीं हो रही, सारी दुनिया अंधविश्वासों से मुक्त होने की कोशिश कर रही है और नये धर्म के जन्म की संभावनाओं को प्रकट कर रही है।

आज बड़ी अजीब हालत है। आज अजीब हालत यह है कि जिसको हम कहें कि जो मंदिर नहीं जाता, हमारे पुराने शास्त्र को नहीं मानता, हमारे पुराने सिद्धांत को नहीं मानता, बहुत संभावना उलटी हो गई है। संभावना यह हो गई है कि उस आदमी की जिंदगी में धर्म थोड़ा ज्यादा हो सकता है बजाय उनके जो मंदिर जाते हैं, पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं।

सच तो यह है कि इस सदी के समस्त बुद्धिमान, विचारशील लोग धर्म के कारागृहों में खड़े होने को राजी नहीं रह गए हैं। उसका कारण यह नहीं है कि लोग अधार्मिक हो गए हैं, उसका कारण कुल इतना है कि अब धर्म वैज्ञानिक होने की चेष्टा कर रहा है। और अवैज्ञानिक धाराएं उसे छोड़नी पड़ेंगी। उन्हें वह छोड़ रहा है। तो आज उलटी बात हुई है।

अगर हम बुद्ध के जमाने में लौटें या कृष्ण के जमाने में लौटें, तो उस जमाने का श्रेष्ठतम बुद्धिमान आदमी धार्मिक था। और आज अगर हम धर्म की तरफ देखें, तो आज का सबसे कम विकसित आदमी धार्मिक मालूम पड़ता है। सबसे कम शिक्षित, सबसे कम बुद्धिशाली, सबसे ज्यादा पिछड़ा हुआ आदमी आज धार्मिक मालूम पड़ता है। कृष्ण के जमाने में सबसे ज्यादा विकसित, सबसे ज्यादा बुद्धिमान आदमी धार्मिक मालूम पड़ता है। यह हैरानी की बात है।

आज जो आदमी ठीक से शिक्षित है, जो आदमी ठीक से सोच-विचार करता है, वह आदमी अचानक अधार्मिक क्यों हो जाता है? यह सोचने जैसी बात है। हम कहेंगे, यह शिक्षा गलत है। हम कहेंगे कि ये, ये तर्क गलत हैं जो आज लोगों को दिए जा रहे हैं, इसलिए लोग अधार्मिक हो रहे हैं।

नहीं, ऐसा नहीं है। बात उलटी हो गई है। बात ऐसी हो गई है कि धर्म अब वैज्ञानिक सुचिंतित होने की चेष्टा कर रहा है। और जब सुचिंतित होने की चेष्टा धर्म करेगा, तो निश्चित ही विचारशील लोग बंधी हुई धाराओं के बाहर हो जाएंगे। धर्म अब वैज्ञानिक हो सकता है, क्योंकि विज्ञान अब विकसित हुआ है। जैसे आज से सौ साल पहले का वैज्ञानिक ईश्वर को इनकार कर रहा था, लेकिन आज का वैज्ञानिक उतनी हिम्मत से ईश्वर को इनकार नहीं कर सकता है।

आइंस्टीन ने मरने के पहले कहा कि जब मैंने विज्ञान की खोज शुरु की थी, तो मैं सोचता था कि आज नहीं कल, सब जान लिया जाएगा।

और आइंस्टीन शायद मनुष्य-जाति में पैदा हुए उन थोड़े से लोगों में से एक है, जिसने सर्वाधिक जाना है।

मरने के दो या तीन दिन पहले आइंस्टीन ने अपने एक मित्र को कहा कि जो भी मैंने जाना है, आज मैं कह सकता हूं कि उससे सिर्फ मुझे मेरे अज्ञान का पता चलता है और कुछ भी पता नहीं चलता। और जो जानने को शेष रह गया है, वह इतना ज्यादा है कि जो हमने जान लिया है, उसकी तुलना भी नहीं की जा सकती। मरने के पहले आइंस्टीन ने कहा कि मैं एक रहस्यवादी की तरह मर रहा हूं, एक वैज्ञानिक की तरह नहीं। मुझे जगत रोज-रोज ज्यादा मिस्टीरियस, ज्यादा रहस्यपूर्ण होता चला गया है। जितनी ही मैंने खोज की है, उतना ही मैंने पाया है कि खोज करने को और भी ज्यादा आयाम खुल गए हैं, और डाइमेन्शंस खुल गए हैं। जितने दरवाजे मैंने खोले, पाया कि और बड़े दरवाजों पर पहुंच गया हूं। जितने रास्ते मैंने पकड़े, पाया कि और बड़े राजपथों पर मुझे पहुंचा दिया गया है। जितनी कुंजियां मैंने पाईं, उनसे जो ताले मैंने खोले, पाया कि और बड़े ताले आगे लटके हुए हैं।

एडिंग्टन ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि जब मैंने सोचना शुरू किया था, तो मैं समझता था कि जगत एक वस्तु है। लेकिन अब मैं कह सकता हूं कि मोर एण्ड मोर आर दि वल्र्ड इ.ज लुकिंग नाॅट लाइक ए थिंग बट लाइक ए थाॅट। लेकिन अब मैं कह सकता हूं कि जगत वस्तु की तरह मालूम नहीं पड़ता, बल्कि एक विचार की तरह मालूम पड़ता है।

अगर जगत एक विचार है, तो विज्ञान ने छलांग लगा ली धर्म में। और जगत अगर एक अनंत रहस्य है, तो हमने परमात्मा शब्द का उपयोग किया हो या न किया हो; हम परमात्मा के द्वार के पास खड़े हो गए हैं। और अगर जगत हमारे ज्ञान से नहीं सुलझता, सिर्फ जानने से नहीं सुलझता, तो बहुत देर नहीं है जब हम यह बात कह पाएंगे कि जानने से नहीं सुलझेगा; होने से सुलझेगा। नाॅलेज काफी नहीं है, बीइंग की जरूरत पड़ गई है। इतना काफी नहीं है कि हम दूर खड़े

होकर देखें, जरूरी हो गया है कि हम एक हो जाएं, तन्मय हो जाएं, डूब जाएं और जानें। शायद जानने का अब एक ही रास्ता है, वह होना है।

विज्ञान अब धर्म के लिए रास्ता खोज रहा है, लेकिन कला भी आ चुकी है दुनिया में। और मैं मानता हूं कि कला तो तब आएगी, जब बड़े व्यापक पैमाने पर धर्म आ जाए। तो फिर कला के नाम पर जो आया है, वह क्या है? कला के नाम पर निन्यानबे प्रतिशत तो वासना का उभार है। नाइंटी नाइन परसेंट। चाहे काव्य हो, चाहे चित्र हो, चाहे मूर्तियां हों, चाहे संगीत हो, कला के नाम पर अभी जो भी पृथ्वी पर है, वह मनुष्य की वासनाओं को उत्तेजना देने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। कह रहा हूं, निन्यानबे प्रतिशत। चाहे कालिदास के ग्रंथ हों और चाहे भवभूति के और चाहे बाॅरेन की कविताएं हों, और चाहे शेली की। पृथ्वी पर जो भी कला के नाम पर अब तक आया है, वह मनुष्य की इंद्रियों को स्टुमलेट का काम कर रहा है और कुछ भी नहीं कर रहा। असल में धर्म के बाद ही वास्तविक कला का जन्म हो सकता है, लेकिन अभी धर्म का ठीक जन्म ही नहीं हो पाया।

एक प्रतिशत मैंने छोड़ दिया। निन्यानवे प्रतिशत कला के नाम पर, सिर्फ मनुष्य की वासनाओं का विस्तार है। और एक प्रतिशत, एक प्रतिशत में कुछ थोड़ा सा हिस्सा उनका है, जिन्होंने धर्म को जाना और कला को जन्म दिया। जैसे मीरा के भजन हों, तो मीरा के भजन साधारण भजन नहीं हैं। मीरा के भजन एक धर्म की अनुभूति से प्रकट हो रहे हैं। एक अनुभूति है भीतर और फिर अभिव्यक्ति हो रही है। कुछ पाया गया है, और अब बांटा जा रहा है। आमतौर से लोग समझते हैं कि मीरा ने भजन कर-करके भगवान को पा लिया।

मैं नहीं समझता। मीरा ने भगवान को पाकर भजन गाने शुरु किए हैं। क्योंकि भजन को गाकर कोई भगवान को कैसे पा सकता है? इतना सस्ता भगवान कि आप भजन गाएंगे और भगवान को पा लेंगे? नहीं, भजन गाना मीरा का भगवान को पाने का रास्ता नहीं है, भगवान को पाने का जो फुलफिलमेंट है, जो तृप्ति है उसकी अभिव्यक्ति है, धन्यवाद है। साधना नहीं है।

चैतन्य नाच रहे हैं। वह नृत्य कोई भगवान को पाने के लिए नहीं है, यह तो सभी नाचने वाले भगवान को पा लें। और, चैतन्य से अच्छे नाचने वाले जमीन पर हैं। और, मीरा से अच्छे गाने वाले लोग जमीन पर हैं। लेकिन चैतन्य के नाच की बात और है। चैतन्य की यह थिरक, भगवान को पाने के लिए नहीं, भगवान को पा लेने की थिरक है। यह भगवान समा गया भीतर। अब यह चैतन्य नहीं नाच रहे हैं। अब यह भगवान ही नाच रहा है। अब यह प्याली भर गई है और ऊपर से बह रही है। और अब यह बहती हुई प्याली से जो कला पैदा होगी, वह बात अलग है।

कृष्ण की बांसुरी...कृष्ण से अच्छे बांसुरी बजाने वाले हुए हैं, हो सकते हैं। शायद प्रतियोगिता में कृष्ण बांसुरी बजाने में जीतेंगे कि नहीं जीतेंगे, यह पक्का नहीं कहा जा सकता। लेकिन फिर कृष्ण की बांसुरी का कोई मुकाबला नहीं है। बांसुरी के तल पर कृष्ण को जीतने वाले लोग हो सकते हैं, लेकिन कृष्ण के तल पर कोई मुकाबला नहीं है। क्योंकि जहां से यह बांसुरी के स्वर आ रहे हैं, वहां अब कृष्ण नहीं हैं, वहां परमात्मा ही हैं। यह बांसुरी कोई खबर दे रही है, यह बांसुरी भीतर जो बजा है, उसे बाहर फैला रही है। भीतर जो अनुगूंज पैदा हुई है उसे बाहर पहुंचा रही है।

एक प्रतिशत कला ऐसी है, जिसे हम कला कह सकें। बाकी निन्यानवे प्रतिशत कला सिर्फ मनुष्य की वासनाओं की सेवा से ज्यादा नहीं है। और इस निन्यानवे प्रतिशत कला में मैं उस कला की भी गिनती करना चाहूंगा जो वासना के विपरीत खड़ी है। इसे थोड़ा समझना मुश्किल पड़ेगा। क्योंकि वासना के खड़े होने के दो ढंग हैं, एक तो वासना सीधी खड़ी होती है, जिससे हम परिचित हैं। और कभी-कभी वासना शीर्षासन भी करती है, जिससे हम परिचित नहीं हैं। वासना जब शीर्षासन करती है, तब हम समझते हैं कि यह आध्यात्मिक कला हो गई। नहीं, वासना के शीर्षासन करने से भी वासना वासना ही रहती है, आध्यात्मिक नहीं हो जाती।

अब जैसे उदाहरण के लिए मैं आपको कहूं, एक चित्र शायद यहां होगा। क्योंकि हरिकिशन दास जी की डायरी में वह चित्र मैंने देखा। उस चित्र में एक सुंदर युवती का चित्र है, युवा। साथ में एक बूढ़ी स्त्री का चित्र है, और नीचे कैप्शन है, नीचे शीर्षक दिया हुआ है। जिसका कुछ मतलब ऐसा है कि जवानी बहुत देर नहीं रुकती, और बुढ़ापे पर ध्यान होना चाहिए। लेकिन इसको मैं आध्यात्मिक नहीं कहूंगा। क्योंकि यहां भी जो सोचने का ढंग है, वह जवानी पर ही खड़ा है। और अगर बुढ़ापे की निंदा की जा रही है तो सिर्फ इसलिए कि जवानी ज्यादा दिन नहीं टिकती।

अगर ज्यादा दिन टिके तो? फिर इस चित्र का क्या होगा? आज नहीं कल विज्ञान रास्ते खोज लेगा कि बुढ़ापा नहीं टिकेगा, जवानी टिकेगी। फिर इस चित्र का क्या होगा? और अभी हम जिस आदमी से कह रहे हैं कि जवानी ज्यादा दिन नहीं टिकती, बुढ़ापे का खयाल रखो। उस आदमी को दूसरा खयाल भी आ सकता है कि जो चीज ज्यादा देर नहीं टिकती, उसको ज्यादा भोग लो। यह दोनों संभावनाएं हैं। और फिर जो आप जोर दे रहे हैं, वह यही दे रहे हैं न कि जवानी ज्यादा देर नहीं टिकती। लेकिन जवानी आपको भी कीमती है और बुढ़ापा आपको भी कीमती नहीं है।

लेकिन धार्मिक कला बुढ़ापे की भी कीमत मानती है। बुढ़ापे का अपना सौंदर्य है। किसने कहा कि बुढ़ापे में सौंदर्य नहीं है। बचपन का अपना सौंदर्य है, जवानी का अपना सौंदर्य है, बुढ़ापे का अपना सौंदर्य है। और धार्मिक आदमी के लिए जन्म ही सुंदर नहीं है; मृत्यु का भी अपना सौंदर्य है। जब सुबह सूरज उगता है, तब ही सुंदर नहीं होता; जब सांझ डूबता है, तब भी सुंदर होता है। और अगर कोई आदमी सच में, ढंग से बूढ़ा हो जाए... बहुत कम लोग हो पाते हैं, क्योंकि जवानी इतने जोर से पकड़ लेती है कि आदमी ठीक से बूढ़ा नहीं हो पाता।

अगर कोई आदमी ठीक से बूढ़ा हो जाए, तो बूढ़े के बराबर सुंदर, जवान कभी भी नहीं हुआ है। क्योंकि जवानी में उत्तेजना है, जवानी में तूफान हैं, आंधियां हैं। बुढ़ापे का सौंदर्य बड़ा शांत सौंदर्य है। बुढ़ापे का सौंदर्य संध्या का सौंदर्य है। सुबह तो जिंदगी के तनाव की है। दिन भर का उपद्रव शुरू हो रहा है। सांझ सब उपद्रव शांत हो गया और रात का विश्राम निकट आ रहा है। सांझ के सूरज का मुकाबला क्या है? पक्षी लौटने लगे हैं घर को, वृक्ष मौन और निद्रा में जाने लगे हैं, सूरज डूबने लगा है, अंधेरा पृथ्वी को घेर लेगा। सब चुप हो जाएगा। सब परमात्मा में एक अर्थों में लीन हो जाएगा। बुढ़ापा भी संध्या है।

लेकिन जब हम चित्र पर जवानी का चित्र बनाते हैं और बुढ़ापे का चित्र बनाते हैं और कहते हैं, सावधान! बुढ़ापा आ रहा है, तो दो बातें पक्की हैं। जवानी हमारे लिए कीमती है और बुढ़ापे के हम भी दुश्मन हैं। तो यह आध्यात्मिक चित्र नहीं हो सकता। यह सिर्फ परवर्टिड पैशन है। यह सिर्फ शीर्षासन करती हुई वासना है। और वासनाग्रस्त आदमी इसमें से यह मतलब नहीं निकालेगा, जो वासना के दुश्मन ने निकाला है। वासनाग्रस्त इस चित्र को देख कर एकदम दौड़ पड़ेगा, वह कहेगा, बुढ़ापा निकट आ रहा है। दिन जल्दी डूबने के हैं, जो भी करना है कर लो। तो वह कहेगा, इट ड्रिंक एण्ड बी मैरी। अब जल्दी पीओ, जल्दी खाओ, जल्दी नाचो, क्योंकि बुढ़ापा करीब आ रहा है। और इन दोनों का तर्क एक जैसा है, इस तर्क में फर्क नहीं है। इन दोनों का तर्क यही है कि बुढ़ापा आ रहा है। मौत आ रही है।

नहीं, इसको मैं अध्यात्मिक चित्र नहीं कहूंगा। अध्यात्मिक कला जमीन पर बहुत कम पैदा हो सकी। या तो वासनाग्रस्त कला है, या वासना विरोधी कला है। और जो वासना के विरोध में है, वह भी वासनाग्रस्त है। जो दुश्मन है वासना का, वह भी वासनाग्रस्त है। जो कह रहा है कि सुख क्षणभंगुर है, इसलिए छोड़ो। वह असल में सुख छोड़ने को नहीं कह रहा है, वह यह कह रहा है कि क्षणभंगुर है, इसलिए छोड़ो। लेकिन अगर शाश्वत हो तो?

तो फिर छोड़ना नहीं है। इसलिए जमीन पर स्त्री को छोड़ो और स्वर्ग में अप्सरा को भोगो। यह धार्मिक आदमी है! जमीन पर शराब छोड़ो और स्वर्ग में शराब के चश्मे बह रहे हैं, उसमें नहाओ। जमीन पर स्त्रियों से बचो और स्वर्ग की अप्सराएं सोलह साल से ज्यादा उम्र की होती ही नहीं, उनकी तैयारी करो। यह आदमी धार्मिक है! यह आदमी कह रहा है, जमीन पर कामनाएं छोड़ो और स्वर्ग में कल्पवृक्ष लगे हैं उनके नीचे बैठो और कामनाएं करो और पूरी हो जाएं।

बड़े मजे की बात है, कामनाएं इसलिए छोड़ो कि कल्पवृक्ष मिल जाए। तो यह कामना छोड़ने वाले की वृत्ति है? नहीं, यह तो मुझे लगता है कि भोगी से भी ज्यादा भोगी मालूम पड़ता है। भोगी तो बेचारा क्षणभंगुर से राजी है। बड़ा त्यागी है। यह आदमी कह रहा है कि हम क्षणभंगुर को छोड़ते हैं, क्योंकि हम शाश्वत को चाहते हैं। हम रमणी को छोड़ते हैं क्योंकि हम तो मोक्षरमणी को चाहते हैं। हम जमीन की स्त्रियों को छोड़ेंगे, क्योंकि वह बूढ़ी हो जाती हैं। हम तो स्वर्ग की अप्सराएं चाहते हैं जो कभी वृद्ध नहीं होती। हम सुख छोड़ते हैं क्योंकि यह आते हैं और चले जाते हैं। हम ऐसे सुख चाहते हैं, जो आएं और कभी न जाएं।

यह आदमी आध्यात्मिक है या सुखवादी है? यह हैडोनिस्ट है, पारएक्सलेंस। इसका मुकाबला ही नहीं है, सुखवाद का। इस सुखवादी ने स्वर्ग बनाए हैं। यह धार्मिक नहीं है। यह प्रलोभन दे रहा है। यह कह रहा है, यहां की स्त्रियां छोड़ो तो और अच्छी स्त्रियां इंतजार कर रही हैं। यहां का धन छोड़ो, तो अपार धन, अनंत धन इंतजार कर रहा है। यहां का शरीर छोड़ो, तो फिर और सुंदर देह मिल जाएगी। देवों की देह।

नहीं, यह धार्मिक चिंतन नहीं है। यह वासना शीर्षासन करती हुई खड़ी हो गई। इसलिए जो आदमी समझना चाहता हो, वह थोड़ा ठीक से देख ले कि इस तरह के सारे के सारे चिंतन के पीछे हमारी अतृप्त कामना ही मांग कर रही है। सप्रेस डिजायर, दमित की हुई कामना ही मांग कर रही है। यह ठीक नहीं है। इससे कोई अध्यात्म पैदा नहीं होगा। आध्यात्मिक कला तो आध्यात्मिक चित्त से पैदा होती है। और आध्यात्मिक चित्त परमात्मा का अनुभव न हो तो नहीं होता।

इसलिए मैं मानता हूं कि अभी वास्तविक कला का पृथ्वी पर जन्म सबसे कम हुआ है। विज्ञान थोड़ा वास्तविक हुआ है, धर्म और भी कम वास्तविक हुआ है, कला तो बहुत ही मुश्किल है वास्तविक होनी। अभी वे महाकवि पैदा नहीं हुए हैं। कभी-कभी झलक मिलती है किसी उपनिषद में, कभी झलक मिलती है किसी गीता में, कभी झलक मिलती है बाइबिल के किसी वचन में, कभी झलक मिलती है कबीर की किसी पंक्ति में, लेकिन झलक ही मिलती है। अभी वे महाकाव्य पैदा नहीं हुए। अभी वे महान मूर्तियां पैदा नहीं हुईं। कभी झलक अजंता में दिखती है, कभी एलोरा में, लेकिन वह झलक है, अभी पृथ्वी उनसे भर नहीं गई।

अभी कला के नाम पर जो चल रहा है, वह सब रोग है। बीमारी है। दो तरह के रोग हैं, एक जो वासना को उभार रहे हैं, एक जो वासना को दबाने की कोशिश में लगे हैं। लेकिन दोनों की दृष्टि वासना पर है।

यह कला अगर ठीक से समझें, तो जीवन का चरम उत्कर्ष है। फिर जरूरी नहीं है कि आप मूर्ति ही बनाएं। फिर जरूरी नहीं है कि आप चित्र ही रंगें, फिर जरूरी नहीं है कि आप बांसुरी ही बजाएं। कुछ भी जरूरी नहीं है। फिर आपका पूरा जीवन ही सृजनात्मक होगा। आप चलेंगे तो भी उसमें काव्य होगा।

जब बुद्ध चलते हैं पृथ्वी पर, तो उनके कदमों की आहट में भी काव्य होता है; और जब जीसस सूली पर लटके हुए लोगों की तरफ देखते हैं, तो उनकी आंख में भी कविता होती है। जरूरी नहीं है कि जीसस चित्र बनाएं। बनाना चाहें तो बना सकते हैं। झेन फकीरों ने जापान में बहुत चित्र बनाए हैं। कोई मुकाबला नहीं उनके चित्रों का। लेकिन वे ध्यान के बाद बनाए हैं। चीन में ताओइस्ट फकीरों ने बड़ी मूर्तियां बनाई हैं, लेकिन वह ध्यान के बाद बनाई हैं।

उन मूर्तियों में, झेन फकीरों के चित्रों में, सूफी दरवेशों के नृत्य में, कबीर, दादू के गीत में, नानक, रैदास की पंक्तियों में, कृष्ण की बांसुरी में, उपनिषद की पंक्तियों में, कभी-कभी झलक आई है। लेकिन पृथ्वी अभी कला से वंचित है। मौन भी काव्य हो सकता है।

सच तो यह है कि परम अर्थों में जब कविता पूरी होती है और कला पूरी होती है, तो मौन हो ही जाएगी। लेकिन हम जिसको कला समझते रहे हैं, उसे मैं कला नहीं कह रहा हूं। हम जिसे कला समझते रहे हैं, वह ठीक वैसी ही है जैसे हम मनुष्य की वासनाओं को सहयोग देने वाला कहें या मनुष्य की वासनाओं को दबाने वाला कहें। लेकिन कला का केंद्र वासना रही है। अभी तक कला का केंद्र आत्मा नहीं हो पाई।

कला का केंद्र आत्मा तभी हो सकती है जब कलाकार देने को उत्सुक न हो, कुछ बनाने को उत्सुक न हो, कलाकार से कुछ बनना शुरू हो जाए, कलाकार से कुछ देना शुरू हो जाए। कलाकार के पास इतना हो कि बांटने के सिवाय उसके पास कोई रास्ता न रहे। लेकिन पीछे होना चाहिए न। हम वही दे सकते हैं जगत को जो हमारे पास है। जो हमारे पास नहीं है, वह हम जगत को कैसे दे सकते हैं?

इसलिए एक बड़ी अनूठी घटना घटती है। किसी कवि की कविताएं पढ़ें, तो ऐसा लगता है कि पता नहीं यह आदमी परमात्मा के मंदिर में प्रविष्ट हो गया होगा। और अगर वह कवि कहीं आपको होटल में बैठा मिल जाए, तो बड़ी मुश्किल होती है। मुश्किल यह होती है कि ये कविताएं इसी आदमी की थीं! चित्रकार का चित्र देख कर ऐसा लगता है कि पता नहीं किस मोक्ष की खबर लाया है। लेकिन अगर वह चित्रकार खुद मिल जाए, तो बड़ी मुश्किल होती है कि इस चित्रकार ने वह चित्र बनाया था! इस चित्रकार में तो कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता जिससे उस चित्र का जन्म हो जाए। तब यह चित्र क्या है?

यह क्रिएशन नहीं है, सिर्फ कंस्ट्रक्शन है। और इस फर्क को समझ लेना ठीक है। सृजन और निर्माण में बड़ा फर्क है। निर्माण के लिए किसी का कलाकार होना जरूरी नहीं है, निर्माण के लिए सिर्फ शिल्पी, टेक्नीशियन होना जरूरी है। एक आदमी रंग फैलाना जानता है, रेखाएं बनाना जानता है। स्कूल हैं, का ॅलेज हैं, जहां रंग फैलाना और रेखाएं बनाना सिखाया जाता है। एक आदमी ने रेखाएं बनानी सीख ली हैं, रंग फैलाना सीख लिया है। यह आदमी टेक्नीशियन है, आर्टिस्ट नहीं है। यह आदमी चाहे तो कुछ भी बना सकता है। अगर इससे सुंदर स्त्री बनवानी हो तो सुंदर बना देगा, कुरूप स्त्री बनवानी हो तो कुरूप बना देगा। वासना भरी मूर्ति बनवानी हो तो वासना भरी मूर्ति बना देगा। और अगर वासना के विपरीत मूर्ति बनानी है, तो वह बना देगा। यह कुशल है, कलाकार नहीं। इस आदमी के पास टेक्नीक है। इसलिए कोई चीज निर्मित कर सकता है।

लेकिन क्रिएटिविटी कंस्ट्रक्शन नहीं है। सृजन बड़ी और बात... हो सकता है कि सृजक के पास कोई, कोई टेक्नीक ही न हो।

मैं सोच भी नहीं पाता कि कृष्ण ने किसी स्कूल में जाकर बांसुरी बजाना सीखा होगा। मैं सोच भी नहीं पाता कि मीरा किसी स्कूल में नाच सीखने गई होगी। मैं सोच भी नहीं पाता, और मुश्किल दिखता है कि चैतन्य ने कहीं भी शिक्षा ली होगी भजन की, और अपनी मृदंग पीटने की। चैतन्य की सारी शिक्षा तो तर्क की थी। चैतन्य ने पढ़ा तो था तर्कशास्त्र। चैतन्य थे तो एक पंडित। चैतन्य थे तो एक अदभुत विचारक। लेकिन एक दिन विचार थक गया, और एक दिन तर्क उस जगह आ गया, जहां तर्क की आगे गति नहीं है। और चैतन्य ने तर्क और विचार को फेंक दिया और मृदंग लेकर सड़कों पर नाचने लगे।

टेक्नीशियन, शिल्पी और कलाकार के फर्क को ठीक से ले लेना जरूरी है। शिल्पी वह बनाता है, जो विचार से बनाना चाहता है। सर्जक वह देता है जो उसके हृदय में भर गया है। शिल्पी मस्तिष्क से जीता है, कलाकार हृदय और आत्मा से जीता है। इसलिए तकलीफ हो रही है। अच्छा कवि हो सकता है कोई, लेकिन अच्छा काव्य उससे पैदा होगा यह जरूरी नहीं। और एक आदमी अच्छा कवि न हो, लेकिन अच्छा काव्य उससे पैदा हो सकता है।

अब उपनिषद के ऋषि कोई बड़े कवि रहे होंगे, ऐसा नहीं मालूम पड़ता। उन्होंने कोई छंद और कोई तुक का हिसाब रखा होगा, ऐसा मालूम नहीं पड़ता। इतने छोटे दिमाग नहीं हो सकते जो छंद और तुक का हिसाब रखते हों। जिसने सब हिसाब छोड़ कर और गैर-हिसाब में जो कूद गए हों, वे इस तरह के छोटे हिसाब नहीं रख सकते। लेकिन उनसे जो पैदा हुआ है, वह अमृत-काव्य है। उस, उस काव्य में बात ही कुछ और है। वह सिर्फ कविता नहीं है, वह सिर्फ शब्दों का जमावट नहीं है। वह सिर्फ मात्राओं का हिसाब नहीं है; वह हृदय का बहाव है। कुछ भीतर से बहा है और फैल गया है। उस बहाव में ही काव्य है।

रेल की गाड़ियां चलती हैं पटरियों पर, ठीक लोहे की पटरियों पर दौड़ती हैं। नदियां रेल की पटरियों जैसी नहीं दौड़ती हैं। बेढंगे हैं उनके रास्ते, अनजान, अपरिचित हैं उनके मार्ग। कुछ पता नहीं, बना-बनाया रेडीमेड कोई रास्ता ही नहीं है गंगा का। लेकिन गंगा के दौड़ने में जिंदगी है; रेल में जिंदगी नहीं हो सकती। टेक्नीशियन रेल की पटरियों पर दौड़ता है,

सीखे-सिखाए मार्गों का उपयोग करता है। कलाकार अनजान, अपरिचित, अननोन में प्रवेश करता है। उसे कुछ पता नहीं है कि क्या होगा।

जिस समय कोई टेक्नीशियन किसी चित्र को बनाता है तो वह जानता है कि क्या बना रहा है, वह जानता है क्या बनाने वाला है। उसकी एक प्लानिंग है। उसकी एक योजना है। लेकिन जब एक सर्जक एक चित्र को बनाता है, तो वह उतना ही चैंकता है बन जाने के बाद जितना देखने वाले चैंकते हैं। उसको खुद भी पता नहीं है कि क्या बन जाएगा। वह सिर्फ परमात्मा के हाथों में अपने को छोड़ देता है। इसलिए बड़े सर्जक कभी नहीं कहते कि हमने कुछ बनाया है; वे कहते हैं, हमारे द्वारा कुछ बनाया गया है। वे सिर्फ मीडियम, माध्यम रह जाते हैं।

इसलिए अंतिम बात आपसे कहूं कि जो व्यक्ति परमात्मा के लिए माध्यम बन जाता है, जैसे कबीर ने कहा है कि मैं तो सिर्फ बांस की एक पोंगरी हूं, मैं कुछ और नहीं हूं। मेरे स्वर नहीं हैं, मैं तो सिर्फ बांस की एक पोंगरी हूं, स्वर तो परमात्मा के हैं। हां, यह हो सकता है कि मेरी पोंगरी ठीक काम न करे और स्वर बेसुरे सुनाई पड़ें, वह गलती मेरी होगी। लेकिन स्वर अगर सुंदर हों, और स्वर अगर प्राणों को नचा दें, तो धन्यवाद परमात्मा को देना। कबीर कहते हैंः मैं बांस की पोंगरी हूं।

कला उस दिन पैदा होती है जिस दिन व्यक्ति बांस की पोंगरी हो जाता है। जिस दिन वह कहता है मैं नहीं हूं, तू ही है। और जिस दिन उसकी अंगुलियां उसके अहंकार का काम नहीं करतीं, बल्कि परमात्मा का काम करने लगती हैं।

रामकृष्ण परमहंस का एक चित्रकार ने फोटो उतारी, और रामकृष्ण के पास वह एक चित्र को बना कर लाया। रामकृष्ण का ही चित्र। और जब वह चित्र आया तो कोई दस-पच्चीस लोग मौजूद थे रामकृष्ण के पास। रामकृष्ण ने वह चित्र देखा, वे उठ कर नाचने लगे और उस चित्र के पैर पड़ने लगे। वह रामकृष्ण का ही चित्र था। पास बैठे भक्तों ने कहाः आप यह क्या कर रहे हैं?

भक्त अपने गुरुओं की बड़ी रक्षा करते रहते हैं, क्योंकि भक्तों को सदा डर रहता है कि गुरु कुछ गड़बड़ न कर दे।

भक्तों ने कहाः आप यह क्या कर रहे हैं? अपने ही चित्र के, और पैर पड़ते हैं? रामकृष्ण ने कहाः भली याद दिलाई, मैं तो भूल ही गया कि मेरा चित्र है। मुझे तो सिर्फ इतना ही लगा कि कैसा समाधिस्थ, समाधि का चित्र है, इक्सटेसी का--तो मैं नाचने लगा। और मैंने पैर पड़ लिए, तुमने अच्छी याद दिलाई, नहीं तो लोग मुझ पर बहुत हंसते।

अब इस आदमी को अपना चित्र भी पहचानने नहीं आया, बात क्या है?

असल में अपनी पहचान ही मिट गई है, नहीं तो पहचान में कैसे न आता। यह आदमी अब सिर्फ बांस की पोंगरी रह गया है। अब यह अपने चित्र में भी परमात्मा को ही देख पाया और पैर पड़ पाया। यह अपने चित्र में भी अपने को न देख सका, समाधि दिखाई पड़ी। रामकृष्ण ने कहा कि इस चित्र के हजारों साल तक लोग पैर पड़ेंगे, क्योंकि यह समाधि का चित्र है। एक सज्जन ने कहा कि आप ऐसी बात न कहें, लोग क्या कहेंगे कि अपने ही मुंह से कैसा अहंकारी आदमी रहा होगा कि कहता है कि मेरे चित्र के लोग हजारों साल तक पैर पड़ेंगे। रामकृष्ण ने कहाः तुमने पता नहीं कैसे सुन लिया? मेरे तो मैंने कहा ही नहीं। मैंने कहाः इस चित्र के। मुझसे क्या लेना-देना है, यह समाधि का चित्र है।

कला जन्मती है उस दिन, जिस दिन कलाकार मर जाता है। जब तक कलाकार है, तब तक कला का जन्म नहीं होता। जब तक अहंकार है तब तक कला का जन्म नहीं होता। जब तक मैं हूं, तब तक सिर्फ कंस्ट्रक्शन है, क्रिएशन नहीं है। परमात्मा इतने बड़े जगत को बना पाया, क्योंकि परमात्मा बिलकुल नहीं है। हम एक छोटा सा चित्र बना लेंगे और बुरी तरह हो जाएंगे। हम एक छोटी सी मूर्ति खोद लेंगे और बुरी तरह हो जाएंगे।

एक बहुत बड़ा मूर्तिकार हुआ। उसने एक पत्थर को खोद कर मूर्ति बनाई। राह से जो लोग भी निकलते हैं, वे धन्यवाद देते हैं कि अदभुत हो तुम, इतनी सुंदर मूर्ति बनाई। वह चित्रकार कहता है कि तुम, सभी नासमझ ही इस रास्ते से गुजरते हैं क्या? मैंने मूर्ति बनाई नहीं। मैं यहां से गुजरता था, इस पत्थर में छिपी मूर्ति ने मुझे पुकारा। मैंने तो सिर्फ बेकार पत्थरों को अलग किया है। मूर्ति तो छिपी थी, वह प्रकट हो गई। मैंने सिर्फ बेकार पत्थरों को अलग कर दिया छेनी से, मूर्ति

तो पत्थर में छिपी थी। मैं यहां से गुजरता था, मूर्ति ने मुझे पुकारा कि कहां जा रहे हो, थोड़े से गलत पत्थर अलग कर दो। और अब मैं कह सकता हूं कि जो मूर्ति के भीतर से मुझे बुलाया, उसी ने मेरे भीतर से सुना। अन्यथा मैं सुन कैसे सकता था? अगर पत्थर के भीतर बोलने वाला और हो, और मेरे भीतर सुनने वाला और हो, तो कम्युनिकेशन कैसे होगा, संवाद कैसे होगा? मैं सुन सका, क्योंकि जो मूर्ति के भीतर छिपा है, वही मेरे भीतर छुपा है। उसने मुझे खबर दी, मैंने गैर-जरूरी पत्थर भर अलग कर दिए हैं।

मूर्तिकार मर जाए, तो मूर्ति पैदा होती है। चित्रकार मर जाए, तो चित्र जन्मता है। कवि मर जाए, तो कविता पैदा होती है। कलाकार नहीं हो जाए, तो कला का जन्म होता है। नहीं हो जाने की कला का नाम ध्यान है। इसलिए आखिरी दो-चार बातें ध्यान के संबंध में आपसे कहूं।

ध्यान का मतलब नहीं है कि आप कुछ करते हैं। लोग कहते हैं, मैं ध्यान करता हूं। जब तक मैं है, तब तक तो ध्यान नहीं हो सकता। लोग कहते हैं, मैं ध्यान करता हूं। जब तक करना है, तब तक भी ध्यान नहीं हो सकता। कभी आपने सोचा, जब आप कहते हैं, मैं प्रेम करता हूं, तो आप बड़ी गलत भाषा बोलते हैं। प्रेम भी किया जा सकता है? कभी दुनिया में किसी ने प्रेम किया है, सिर्फ अभिनेताओं को छोड़ कर। और अगर आप भी करते हैं तो अभिनय ही करते होंगे, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता कि मंच आपकी कितनी बड़ी है और अभिनेता कितने स्थाई हैं--इससे कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता।

प्रेम किया नहीं जा सकता, प्रेम कोई कृत्य नहीं है, एक्ट नहीं है। कैसे करिएगा प्रेम? इसलिए अगर मैं आपसे कहूं कि चलिए शुरु करिए प्रेम, आप कैसे करिएगा? आप अचानक पाएंगे कि नहीं होता। आप कहेंगे कैसे कर सकता हूं?

प्रेम कोई कृत्य नहीं है, एक्शन नहीं है। प्रेम एक स्टेट आॅफ माइंड है। एक चित्त की दशा है। किया नहीं जाता, होता है। इसलिए जो लोग प्रेम में गहरे उतरेंगे, वे कहेंगे प्रेम हो गया। वे नहीं कहेंगे कि प्रेम किया। और दूसरे मजे की बात है कि जब प्रेम होता है, तब आप नहीं होते। और जब तक आप होते हैं, तब तक प्रेम नहीं होता।

जब आप अपने प्रेमी के पास होते हैं, तब आप होते हैं? नहीं प्रेमी हो सकता है, आप नहीं होते। आप बिलकुल मिट गए होते हैं, आप होते ही नहीं है, एक शून्य रह गया होता है। इसलिए दो प्रेमी जब मिलते हैं, तो कितना विचार करके आते हैं कि यह बात करेंगे, यह बात करेंगे, यह बात करेंगे। लेकिन जब मिलते हैं, तो चुप हो जाते हैं। सब बातें खो जाती हैं। ऐसे ही जैसे जब तक घड़ा खाली होता है, तो आवाज करता है और जब भर जाता है, तो चुप हो जाता है। दो प्रेमी मिल कर आज तक इतना भी नहीं कह पाए कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। आप कहेंगे, नहीं, बहुत प्रेमी कहते हैं कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं।

ध्यान रखना: जब कोई कहे, मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। तो समझना कि प्रेम का क्षण जा चुका है, यह सिर्फ स्मृति है। जब प्रेम होता है तो इतने कहने का भी मन नहीं होता कि करता हूं, कि मैं हूं। जब प्रेम होता है, तो प्रेम ही इतना होता है कि वहां मैं और तू को जगह नहीं रह जाती।

रुमी ने एक गीत लिखा है कि एक प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार को खटखटाता है। पीछे से आवाज आती है, कौन है तू? तो वह प्रेमी कहता है, मैं हूं। तूने आवाज नहीं पहचानी? तो वह प्रेयसी कहती है कि जब तक तू है और तेरी आवाज और तेरी पहचान, तब तक प्रेम के द्वार कैसे खुल सकते हैं? वह प्रेमी वापस लौट जाता है। वर्षों के बाद वापस आता है, फिर द्वार ठोकता है। वह प्रेयसी पूछती है, कौन है तू? तो वह प्रेमी कहता है अब तो मैं नहीं हूं, अब तो तू ही है। और रुमी कहते हैं कि द्वार खुल जाता है।

मैं नहीं कहूंगा। मैं मानता हूं रुमी ने जरा जल्दी द्वार खुलवा दिए। मैं तो कहूंगा कि वह प्रेयसी फिर कहती है कि जब तक तेरे लिए तू है, तब तक मैं भी छुपा होगा, कहीं न कहीं गहरे में बैठा होगा। क्योंकि अगर मैं भीतर मर जाए, तो बाहर तू भी मिट जाता है। मैं और तू एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जहां तक मैं है, वहां तक तू है।

इसलिए जो भक्त भगवान से कहता है कि तू ही है, मैं नहीं हूं। वह घोषणा कर रहा है कि मैं पूरी तरह हूं। उसके घोषणा न करने में, उसके इनकार में भी उसका मैं मौजूद है। इनकार करने को भी कम से कम मैं तो चाहिए ही। नहीं, भक्त

इतना भी नहीं कहता कि तू ही है, मैं नहीं हूं, भक्त कुछ कहता ही नहीं, बस रह जाता है। वह तू भी नहीं कहता, मैं भी नहीं कहता। वह चुप हो जाता है। इस चुप्पी का नाम ध्यान है।

यह चुप्पी अगर प्रेम से उपलब्ध हो जाए, तो उस मार्ग का नाम भक्ति है। यह चुप्पी अगर ज्ञान से उपलब्ध हो जाए, तो उस मार्ग का नाम ज्ञान है। यह चुप्पी अगर कर्म के मार्ग से उपलब्ध हो जाए, तो उस मार्ग का नाम कर्म है। और इस चुप्पी का नाम ध्यान है। चुप हो जाए मेरा मैं, वह जो भीतर निरंतर बोल रहा है--मैं। वह श्वास-श्वास में बोल रहा है--मैं। आंख की पलक हिलती है तो--मैं, पैर उठता है तो--मैं, श्वास लेता हूं तो--मैं। सब तरफ वह जो मेरा मैं है, वह चुप होता जाए, वह शांत होता जाए। और एक घड़ी आ जाए कि मैं अपने भीतर खोज कर कह सकूं कि मैं कहां गया? मैं कहां है? तो ध्यान उपलब्ध होता है।

लेकिन हम बड़े अदभुत लोग हैं। सांसारिक आदमी का मैं तो होता ही है, जिसको हम धार्मिक कहते हैं, उसका और प्रगाढ़ता से होता है। एक गृहस्थ का तो मैं होता ही है, होना ही चाहिए। लेकिन जिसको हम संन्यस्त कहते हैं, उसके मैं का कोई मुकाबला ही नहीं। संन्यासी का मैं और सघन हो जाता है। भक्त को देखा है सड़क पर, उसकी अकड़ ही और है। क्योंकि वह टीका लगाए हुए है। जिसके माथे पर टीका नहीं है, उसको वह नरक भेजने की नजर से देख रहा है। जो मंदिर नहीं गया है, उसको सोच रहा है कि नरक में सड़वा देगा, आश्चर्य है!

ध्यान का अर्थ सिर्फ एक ही है कि मैं न रह जाए। लेकिन वह मैं बड़ा प्रगाढ़ होता चला जाता है। मैं की तरकीबें अनंत हैं। उसके रास्ते सूक्ष्म हैं। कहीं से भी भागो, मैं पकड़ लेता है। मैं से भी भागो तो पकड़ लेता है। और निर-अहंकारी खड़े होकर बाजार में कहने लगता है कि मुझसे बड़ा निर-अहंकारी कोई भी नहीं है। हद हो गई!

यह अहंकार की घोषणा है कि मुझसे बड़ा निर-अहंकारी और कोई भी नहीं। अहंकार के रास्ते सूक्ष्म हैं। वह धन होता है, तो कहता है इतना है धन मेरे पास। वह धन को त्याग देता है, तो वह कहता है इतने धन को मैंने लात मार दी। लेकिन वह मैं पीछे खड़ा रह जाता है। वह संसार में भी अपने को भर लेता है। वह परमात्मा में भी अपने को भर लेता है। वह कहता है मेरा परमात्मा सही है, तुम्हारा गलत है।

मेरा भी परमात्मा हो सकता है, वह भी मेरा पजेशन हो जाता है। अगर मेरे मंदिर में आग लगा दी तो मैं आपकी मस्जिद में आग लगा दूंगा, क्योंकि वह तुम्हारे परमात्मा का मंदिर है। मस्जिद वाला मंदिरों को तोड़ता जाएगा, मंदिर वाले मस्जिदों को तोड़ते जाएंगे। ईसाई हिंदू को गलत समझेगा, हिंदू ईसाई को गलत समझेगा। गीता वाला कुरान को गलत समझेगा, कुरान वाला वेद को गलत समझेगा। यह क्या पागलपन है?

लेकिन जहां मैं है, वहां पागलपन होता ही है। असल में मैं के अतिरिक्त और कोई मैडनेस नहीं है। मैं ही पागलपन है। मैं जितना बड़ा होता जाता है, हमारे भीतर पागल उतना सघन होता जाता है। मैं जितना विरल होता है, हमारे भीतर पागल उतना विदा होता जाता है। जिस दिन मैं नहीं रह जाता, उस दिन हम पागल नहीं रह जाते। और जो पागल नहीं है, वह धार्मिक है। वह ध्यान को उपलब्ध होता है।

तो अंतिम बात आपसे इतना ही कहूं कि जरा इस मैं के रास्ते पहचानना। खयाल करके इससे लड़ना मत। क्योंकि लड़ेंगे तो वह मैं कहेगा कि देखो मैं लड़ रहा हूं। लड़ना मत सिर्फ रास्ते पहचानना कि मैं कहां-कहां से हाथ बढ़ा कर आपको पकड़ लेता है। बस सुबह से सांझ तक उसके रास्ते पहचानना। और जब वह पकड़े और जब आपके पैर को पकड़ ले, और आप अकड़ कर चलने लगें, और जब आपकी रीढ़ को पकड़ ले, और आप पद्मासन में बैठ जाएं, और जब आपके सिर को पकड़ ले, और टीका लगा ले, और जब मंदिर में आपको पकड़ ले, और चाल बदल जाए, तो जरा उसको पहचानना कि यह मैं पकड़ रहा है।

और जब आप मैं को पहचानने लगेंगे, तो बुद्ध का एक वचन है कि जैसे घर में दीया जला हो तो चोर नहीं आते, और घर का पहरेदार जगा हो तब तो चोर आना बहुत मुश्किल हो जाता है, लेकिन पहरेदार सोया हो और घर का दीया बुझा हो, तब तो घर चोरों का ही हो जाता है।

ऐसे ही जब भीतर हमारा पहरेदार जगा हो, साक्षी जगा हो और देख रहा हो कि कहां-कहां से मैं पकड़ रहा है, तो वह मैं का चोर आना बंद हो जाता है। और जब हमारे भीतर चेतना का दीया जला हो, मौन का दीया जला हो, चुप्पी का दीया जला हो, तो वह फिर चोर हमारे भीतर प्रवेश नहीं कर पाता। और एक ही चोर है, मैं। उसने ही हमसे परमात्मा को छीन लिया है। छोटा-मोटा चोर नहीं है, बहुत बड़ा चोर है। क्योंकि जो परमात्मा को छीन सके, वह कोई साधारण चोर नहीं है। एक ही दीवाल है।

मैं एक बच्चे को देख रहा था एक रास्ते पर। वह एक बांस की छोटी सी पोंगरी बना कर साबुन के बबूले उड़ा रहा था। पोंगरी को डुबा लेता था साबुन के पानी में, फूंक मारता था, बबूला बन जाता और आकाश में उड़ता था। सुबह का सूरज, साबुन का बबूला, सुबह की सूरज की किरणें, उसमें उठता हुआ बबूला और सूरज की किरणें सब तरंगों में टूट जातीं उस बबूले को पार करके, बड़ा सुंदर हो जाता था। वह बच्चा उसे पकड़ने दौड़ता था, लेकिन वह बबूला ऊपर उठता जाता था।

बड़ी मजे की घटना उस दिन मुझे दिखाई पड़ी। वह साबुन नीचे भी पड़ा था, लेकिन सुंदर न था। वही साबुन की एक बूंद फैल कर सूरज की किरणों में बहुत सुंदर हो गई थी। जिसे हम सौंदर्य कहते हैं, वह सब ऐसा ही सौंदर्य है। सब मिट्टी है, सूरज की किरणों में फैल कर सुंदर हो जाती है। कहीं फूल बन जाता है, कहीं आदमी बन जाता है, कहीं स्त्री बन जाती है, कहीं चांद बन जाता है। सब सूरज की किरणों में फैल कर सुंदर हो जाता है।

सौंदर्य नीचे पड़ी चीजों का ऊपर उठ जाना है। सौंदर्य अंधेरे में पड़ी चीजों का प्रकाश में आ जाना है। सुंदर हो गई थी बहुत, एक बूंद साबुन की। बर्तन में नीचे साबुन की बूंदें पड़ी थीं, सुंदर न थीं। सूरज की किरणों में बहुत सुंदर हो गई थीं। और बड़ा आश्चर्य कि वह बबूला ऊपर उठ रहा था। ऐसा लगता था जैसे बबूला अपनी तरफ से ऊपर उठ रहा है। आपने भी साबुन के बबूले ऊपर उठते देखे होंगे, लेकिन आपको पता न होगा कि बबूला क्यों ऊपर उठता है?

साबुन का बबूला इसलिए सिर्फ ऊपर उठता है कि बच्चे के मुंह से जो हवा निकलती है वह गर्म होती है, बाहर की हवा से। ठंडी हवा नीचे की तरफ गिरती रहती है, गरम हवा ऊपर की तरफ उठने लगती है। गर्म हवा को जगह देने के लिए ठंडी हवा मार्ग छोड़ देती है, तो वह बबूला ऊपर उठने लगता है। हालांकि बबूला भी नीचे गिरना चाहता है। सब चीजें नीचे गिरना चाहती हैं। लेकिन गर्म हवा है, विरल है, आस-पास की जो हवा है, ज्यादा ठंडी, ज्यादा सघन है। आस-पास की हवा ज्यादा ईगोइस्ट है, ज्यादा अहंकार से भरी है। बबूले के पास अहंकार जरा विरल है। तो वह ऊपर उठने लगता है। उसके पास मैं का भाव थोड़ा कम है। हवा थोड़ी सघन कम है, इसलिए ऊपर उठने लगता है।

लेकिन एक और मजे की बात है कि वह थोड़ी देर ही ऊपर उठता है, लेकिन जैसे-जैसे ऊपर उठता है, बड़ा होता जाता है। जो भी चीज ऊपर उठती है, बड़ी होती चली जाती है। वह बबूला भी बड़ा होता चला जाता है, क्योंकि उस पर दबाव हवा का कम होता जाता है और साबुन फैलती चली जाती है। फिर एक क्षण आता है कि साबुन का बबूला टूट जाता है और हम कहते हैं बबूला मर गया। वह बच्चा दूसरा बबूला बनाने में लग जाता है।

लेकिन क्या बबूला मर गया? क्या मर गया? उस साबुन की पतली सी फिल्म के भीतर जो हवा थी, वह मर गई। वह अब भी है। वह साबुन की पतली सी फिल्म जो उस हवा के चारों तरफ फैल गई थी, वह मर गई? वह अब भी है। मर कुछ भी नहीं गया। सिर्फ बबूला इतना बड़ा हो गया कि अब साबुन की फिल्म उसे न सम्हाल सकी। साबुन की फिल्म टूट गई और बबूला विराट सागर से मिल गया।

ऐसे ही ध्यान में रोज विरलता आती जाती है। फिर एक दिन जिसे हम ‘मैं’ कहते हैं, वह साबुन के बबूले की फिल्म की तरह टूट जाता है। हम मर नहीं जाते, लेकिन जिसे हम ‘हम’ कहते थे, वह मर जाता है। वह भी क्या मर जाता है, सिर्फ हमारा भ्रम मर जाता है। और वह जो हमारे भीतर विराट हमारे बबूले के भीतर बंद था, विराट के साथ एक हो जाता है। उस दिन नृत्य है। उस दिन संगीत है। उस दिन कला है। उस दिन सृजन है। उस दिन व्यक्ति के जीवन से दुख का अंत हो गया और आनंद की वीणा बजने लगती है।

उस आनंद की वीणा से उठे स्वरों का नाम कला है। उस आनंद के स्वरों से जन्मे हुए चित्रों का नाम कला है। उस आनंद के स्वरों से बजे हुए घुंघरुओं का नाम कला है। उस आनंद से जो भी हो, चाहे मौन, चाहे नृत्य, चाहे संगीत, चाहे गीत, चाहे काव्य, चाहे साहित्य, और चाहे कुछ भी न हो, कोई चुप ही रह जाए, तो उसका मौन भी कला है।

यह तीन बातें मैंने कही। विज्ञान प्रथम चरण है। वह तर्क का पहला कदम है। तर्क जब हार जाता है तो धर्म दूसरा चरण है, वह अनुभूति है। और जब अनुभूति सघन हो जाती तो वर्षा शुरु हो जाती है, वह कला है। और इस कला की उपलब्धि सिर्फ उन्हें ही होती है जो ध्यान को उपलब्ध होते हैं। ध्यान की बाई-प्रा ॅडक्ट है। जो ध्यान के पहले कलाकार है, वह किसी न किसी अर्थों में वासना केंद्रित होता है। जो ध्यान के बाद कलाकार है, उसका जीवन, उसका कृत्य, उसका सृजन, सभी परमात्मा को समर्पित और परमात्मामय हो जाता है।

इसलिए कला को मत खोजना, खोजना ध्यान को। और कला को छाया की तरह पीछे से आने देना। कला को मत खोजना, खोजना मौन को; कला को पीछे आने देना। कला सदा शैडो की तरह आती है, पीछे से आती है। जो कला को सीधा खोजता है, वह शैडोलैंड में खो जाता है। वह सिर्फ छायालोक में खो जाता है। इसलिए जिसको हम कलाकार कहते हैं--चित्रकार, मूर्तिकार, कवि--वे सब छायालोक में खोए रहते हैं। सत्य की दुनिया से उनका कोई संबंध नहीं हो पाता। वे सिर्फ सपनों में ही खोए रहते हैं। और अपने सपनों को ही सजाते और संवारते रहते हैं। कला का सपनों से कोई संबंध नहीं। जितना संबंध विज्ञान का सत्य से है, जितना संबंध धर्म का सत्य से है, उतना ही संबंध कला का भी सत्य से है।

ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। जरूरी नहीं कि मेरी सब बातें ठीक हों। यह भी जरूरी नहीं कि कोई एकाध बात भी ठीक हो। यह भी जरूरी नहीं कि आप मेरी बातें मानें। इतना ही काफी है कि जो मैंने कहा उसे आप थोड़ा सा सोचना, हो सके तो थोड़ा सा अनुभव करना। हो सके तो अनुभूति को थोड़ा सा फैलने देना और बंटने देना।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

धर्म और विज्ञान का समन्वय

विज्ञान, धर्म और कला-7

मनुष्य के जीवन की सारी यात्रा, जो अज्ञात है उसे जान लेने की यात्रा है। जो नहीं ज्ञात है उसे खोज लेने की यात्रा है। जो नहीं पाया गया है उसे पा लेने की यात्रा है। जो दूर है उसे निकट बना लेने की। जो कठिन है उसे सरल कर लेने की। जो अनुपलब्ध है उसे उपलब्ध कर लेने की। मनुष्य की इस यात्रा ने स्वभावतः दो दिशाएं ले ली हैं। एक दिशा मनुष्य के बाहर की ओर जाती है, दूसरी मनुष्य के भीतर की ओर।

एक फकीर औरत थी, राबिया। एक सुबह उसका एक मित्र फकीर उसके झोपड़े के बाहर आकर उसे बुलाने लगा और कहने लगा, राबिया, तू भीतर क्या कर रही है? बाहर आ। सूरज निकल रहा है। और बड़ी सुंदर सुबह का जन्म हुआ है। इतना सुंदर प्रभात मैंने कभी नहीं देखा। तू भीतर द्वार बंद किए क्या करती है? बाहर आ। राबिया भीतर से हंसने लगी और उसने कहाः हसन, बाहर के सूरजों को मैंने बहुत देखा, बाहर, बाहर की प्रभात भी मैंने बहुत देखी, बहुत सुंदर सुबह देखी, बहुत सुंदर रात्रियां देखीं। बड़ी अदभुत हैं। लेकिन जब से मैं भीतर आ गई हूं, तब से जो देखा है, उसके सौंदर्य के आगे बाहर का सौंदर्य कुछ भी नहीं है। तो मैं तुझसे कहती हूं हसन, तू ही भीतर आ जा। तू बाहर क्या कर रहा है?

पता नहीं हसन की समझ में बात आई या नहीं। लेकिन एक तो जगत वह है जो आंखों से दिखाई पड़ता है, और एक जगत वह भी है जो आंखों से दिखाई नहीं पड़ता है। एक सत्य वह भी है जो हाथ के स्पर्श में आ जाता है, और एक सत्य वह भी है जिसकी सपनों में झलक मिलती है। एक हमसे बाहर है जगत, और एक हमारे भीतर भी। और इन दोनों जगतों का अपना सौंदर्य है, अपना सत्य है। इन दोनों जगतों की अपनी सच्चाई है, अपना यथार्थ है। शायद अंततोगत्वा, अल्टीमेटली ये दोनों जगत किसी एक ही चीज के दो पहलू हों। लेकिन साधारणतः ऊपर से देखे जाने पर ये दो दिखाई पड़ते हैं। इन दो के कारण ही धर्म और विज्ञान का जन्म हो गया।

जो जगत बाहर है, उसकी खोज; जो अज्ञात, जो अननोन, बाहर है, उसे जान लेने की यात्रा विज्ञान बन गई है। और जो जगत भीतर है, वह जो अज्ञात भीतर है, उससे परिचित हो जाने की, उसे जी लेने की और जान लेने की यात्रा धर्म बन गई। और मनुष्य की समृद्धि और शांति इसमें ही निर्भर है कि ये दोनों यात्राएं विरोधी न हों--सहयोगी हों, साथी हों, समन्वित हों। लेकिन अब तक ऐसा नहीं हो सका।

अब तक जिन लोगों ने पदार्थ की जगत में खोज की है, वे लोग परमात्मा के विरोधी रहे हैं। और जिन लोगों ने परमात्मा की खोज की है, वे पदार्थ के निंदक रहे हैं। इन दोनों तरह के लोगों ने मनुष्य की संस्कृति को परिपूर्ण होने से रोका है। इन दोनों ने ही उसे परिपूर्ण हो◌ेने से रोका है। क्योंकि मनुष्य न केवल शरीर है, न केवल आत्मा है; मनुष्य न केवल पदार्थ है, न केवल परमात्मा है; मनुष्य तो दोनों का अदभुत मिलन और संगीत है। मनुष्य का जीवन दोनों के मध्य एक सेतु है, एक ब्रिज है। और इस बात को आज तक विस्मरण किया गया है, झुठलाया गया है।

जिन लोगों ने परमात्मा की प्रशंसा की, उन्होंने पदार्थ की निंदा पर परमात्मा की प्रशंसा की, जो गलत थी। पदार्थ के गौरव और गरिमा पर भी परमात्मा की प्रशंसा हो सकती थी। जिन लोगों ने पदार्थ की खोज-बीन की है और पदार्थ पर विजय की है, उन्होंने यह विजय परमात्मा की तरफ उपेक्षा, विरोध और अस्वीकार से की है।

यह परमात्मा के साथ और परमात्मा की प्रार्थना के साथ भी हो सकती थी। इसमें परमात्मा का कोई विरोध न था। लेकिन यह अब तक नहीं हुआ कुछ कारणों से। और विज्ञान और धर्म दो शत्रुओं की भांति खड़े हो गए हैं। उनकी शत्रुता मनुष्य के लिए बहुत महंगी पड़ रही है।

पश्चिम विज्ञान का प्रतीक बन गया है। पूरब धर्म का प्रतीक बन गया है। विज्ञान नास्तिकता का प्रतीक बन गया है, धर्म अलौकिकता का। ये दोनों ही बातें भ्रांत हैं और गलत हैं। ये दोनों ही बातें अधूरी और एकांगी हैं।

एक छोटी सी कहानी मुझे स्मरण आती है, उससे मैं यह बात समझाना चाहूंगा।

रोम में एक सम्राट बीमार पड़ा हुआ था। वह इतना बीमार था कि चिकित्सकों ने अंततः इनकार कर दिया कि वह नहीं बच सकेगा। सम्राट और उसके प्रियजन बहुत चिंतित हो आए। और अब एक-एक घड़ी उसकी मृत्यु की प्रतीक्षा ही करनी थी। और तभी रोम में यह खबर आई कि एक फकीर आया है जो मुर्दों को भी जिला सकता है। सम्राट की आंखों में आशा वापस लौट आई। उसने अपने वजीरों को भेजा उस फकीर को ले आने को। वह फकीर आया। और फकीर ने आकर उस सम्राट को कहा कि कौन कहता है कि तुम मर जाओगे? तुम्हें तो कोई बड़ी बीमारी भी नहीं है। तुम उठ कर बैठ जाओ, तुम ठीक हो सकोगे, एक छोटा सा इलाज कर लो। सम्राट जो महीनों से लेटा हुआ था, उठा नहीं था, उठ कर बैठ गया। उसने कहाः कौन सा इलाज? जल्दी बताओ उसके पहले कि मैं समाप्त न हो जाऊं। क्योंकि चिकित्सक कहते हैं कि मेरा बचना मुश्किल है। वह फकीर बोलाः क्या तुम्हारी इस राजधानी में एकाध ऐसा आदमी नहीं मिल सकेगा जो सुखी भी हो और समृद्ध भी? अगर मिल सके तो उसके कपड़े ले आओ और उसके कपड़े तुम पहन लो, तुम बच जाओगे। तुम्हारी मौत पास नहीं। वजीर बोलेः यह तो बहुत आसान सी बात है। इतनी बड़ी राजधानी है, इतने सुखी, इतने समृद्ध लोग हैं, महलों से...आकाश छू रहे हैं महल, आपको दिखाई नहीं पड़ता? यह वस्त्र हम अभी ले आते हैं।

फकीर हंसने लगा, उसने कहाः अगर तुम वस्त्र ले आओ तो सम्राट बच जाएगा। वे वजीर भागे। वह उस फकीर की हंसी को कोई भी न समझ सका। वे गए नगर के सबसे बड़े धनपति के पास और उन्होंने जाकर कहा कि सम्राट मरणशय्या पर है और किसी फकीर ने कहा है कि वह बच जाएगा, किसी सुखी और समृद्ध आदमी के वस्त्र चाहिए, आप अपने वस्त्र दे दें। वह नगर सेठ की आंखों में आंसू आ गए। उसने कहाः मैं अपने वस्त्र ही नहीं, अपने प्राण भी दे सकता हूं अगर सम्राट बचते हों, लेकिन मेरे वस्त्र काम नहीं आ सकेंगे। मैं समृद्ध तो हूं, लेकिन सुखी मैं नहीं हूं। सुख की खोज में मैंने समृद्धि इकट्ठी कर ली, लेकिन सुख से अब तक मिलन नहीं हो सका। और अब तो मेरी आशा भी टूटती जाती है। क्योंकि जितनी समृद्धि संभव थी मेरे पास आ गई है और अब तक सुख के कोई दर्शन नहीं हुए। मेरे वस्त्र काम नहीं आ सकेंगे। मैं दुखी हूं, मैं क्षमा चाहता हूं।

वजीर तो बहुत हैरान हुए। उन्हें फकीर की हंसी याद आई। लेकिन और लोगों के पास जाकर पूछ लेना उचित था। वे नगर के और धनपतियों के पास गए। और सांझ होने लगी। और जिसके पास गए उसी ने यह कहा कि समृद्धि तो बहुत है लेकिन सुख, सुख से हमारी कोई पहचान नहीं है। वस्त्र हमारे काम नहीं आ सकेंगे।

फिर तो वे बहुत घबड़ाए कि सम्राट को क्या मुंह दिखाएंगे? सम्राट खुश हो गया है। और यह इलाज हमने समझा था कि सस्ता है, यह तो बहुत महंगा मालूम पड़ता है, बहुत कठिन। तभी उनके पीछे दौड़ता हुआ सम्राट का बूढ़ा नौकर हंसने लगा और उसने कहा कि जब फकीर हंसा था तभी मैं समझ गया था। और जब तुम सम्राट के सबसे बड़े वजीर भी अपने वस्त्र देने का खयाल तुम्हारे मन में न उठा और दूसरों के वस्त्र मांगने चले, तभी मैं समझ गया था कि यह इलाज मुश्किल है। ये वस्त्र मिलने कठिन हैं। क्योंकि सम्राट का बड़ा वजीर भी यह नहीं सोचता है कि अपने वस्त्र दे दूं। उस वजीर ने कहा कि मैं अपने वस्त्र कैसे देता? समृद्धि तो मेरे पास है लेकिन सुख, सुख से तो मेरा भी कोई संबंध नहीं हो सका है। फिर उन वजीरों ने सोचा कि सम्राट मरेगा ही, बचना कठिन है। उस फकीर ने धोखा दे दिया। लेकिन दिन की रोशनी में सम्राट को क्या चेहरा दिखाएंगे, तो उन्होंने सोचा कि रात हो जाए फिर अंधेरे में चलेंगे और रोकर और प्रार्थना कर देंगे कि नहीं, यह इलाज नहीं हो सकता। फिर जब सूरज ढल गया तो सम्राट के महल के पास पहुंचे। महल के पीछे ही गांव की नदी बहती थी। अंधेरे में नदी के उस पार से किसी की बांसुरी की आवाज सुनाई पड़ रही थी। वह संगीत बड़ा मधुर था। वह संगीत बड़ी शांति की खबर लिए हुए था। उस संगीत की लहरों के साथ आनंद की भी कोई धुन थी। उन वजीरों ने सोचा कि शायद इस बांसुरी बजाने वाले आदमी को सुख मिल गया। इससे और पूछ लें, इससे पहले कि सम्राट को इनकार करें। एक और कोशिश कर लें।

वे नदी पार करके उस आदमी के पास अंधेरे में पहुंचे। जैसे-जैसे पास गए वैसे-वैसे उन्हें लगा कि शायद यही वह आदमी है जिसके वस्त्र काम आ जाएंगे। उसके संगीत में ही कुछ ऐसी बात थी कि उनके प्राण भी जो निराशा और उदासी से भरे थे वे भी पुलक उठे, वे भी नाचने लगे। वे उस आदमी के पास पहुंचे और उन्होंने कहा कि मित्र, हम बहुत संकट में हैं, हमें बचाओ, सम्राट मरणशय्या पर पड़ा है। हम तुमसे यह पूछने आए हैं कि तुम्हें जीवन में आनंद मिला है? वह आदमी कहने लगाः आनंद, आनंद मैंने पा लिया है। कहो, मैं क्या कर सकता हूं? वे खुशी से भर गए और उन्होंने कहा कि तुम्हारे वस्त्रों की जरूरत है। सम्राट मरणशय्या पर है और किसी सुखी और समृद्ध आदमी के वस्त्र चाहिए। वह आदमी हंसने लगा, उसने कहाः मैं अपने प्राण दे दूं, सम्राट को बचाना हो, लेकिन वस्त्र मेरे पास नहीं हैं, मैं नंगा बैठा हुआ हूं। अंधेरे में आपको दिखाई नहीं पड़ रहा।

उस रात वह सम्राट मर गया। क्योंकि समृद्ध लोग मिले, जिनका सुख से कोई परिचय न था। एक सुखी आदमी मिला, जिसके पास वस्त्र भी न थे। अधूरे आदमी मिले, एक भी पूरा आदमी न मिला। जिसके पास वस्त्र भी हों और जिसके पास आत्मा भी हो, ऐसा कोई आदमी नहीं मिला। इसलिए सम्राट मर गया।

पता नहीं यह कहानी कहां तक सच है। लेकिन आज तो पूरी मनुष्यता मरणशय्या पर पड़ी है। और आज भी यही सवाल है कि क्या हम ऐसा मनुष्य पैदा कर सकेंगे जो समृद्ध भी हो, शांत भी? जिसके पास वस्त्र भी हों और आत्मा भी? जिसके पास संपदा हो बाहर की और भीतर की भी? जिसके पास शरीर के सुख भी हों और आत्मा के आनंद भी?

पश्चिम ने वस्त्र पैदा कर लिए। विज्ञान वस्त्र ही पैदा कर सकता है। विज्ञान मनुष्य को आत्मा नहीं दे सकता। विज्ञान समृद्धि दे सकता है। और बहुत समृद्धि दे सकता है। और मनुष्य को अपूर्व समृद्धि से समृद्ध कर सकता है। पश्चिम ने समृद्धि इकट्ठी कर ली है और वस्त्र, और वस्त्र, और वस्त्र बढ़ते चले गए। लेकिन भीतर की आत्मा खो गई, भीतर की शांति खो गई। भीतर का आनंद खो गया। आदमी वहां खड़ा है घबड़ाया हुआ कि सब हमारे पास है, सिर्फ हमको छोड़ कर। भीतर सब खाली है, बाहर सब भर गया है। भीतर आदमी रिक्त होता चला गया और बाहर सामग्री बढ़ती चली गई।

आज आदमी को अपने ही द्वारा इकट्ठे किए गए सामान में खोजना कठिन हो गया है। वह पश्चिम ने अकेले विज्ञान की यात्रा की है, वह समृद्ध हो गया। पूरब दरिद्र से दरिद्र होता चला गया। उसके सब वस्त्र छिन गए, उसकी रोटी छिन गई। वह भूखा और गरीब होता चला गया। उसने कुछ शांति के स्वर पाए। उसने कोई बांसुरी बजाई भीतर की, उसने कोई संगीत अनुभव किया--किसी बुद्ध ने, किसी महावीर ने किन्हीं ऊंचाइयों पर किसी बहुत गहरे आनंद को प्रतीत किया। लेकिन अधिकतम लोग नंगे और उघाड़े होते चले गए। भूखे, दीन-हीन और दास होते चले गए। अकेले धर्म की यात्रा यही कर सकती थी। अकेले धर्म की खोज यही कर सकती थी कि आदमी दीन-हीन होता चला जाए।

भीतर के लिए, बाहर की कुर्बानी का यही परिणाम हो सकता था कि मुल्क, राष्ट्र, वे लोग जो भीतर की यात्रा में एकांगी रूप से पड़ गए हैं वे दास हो जाएं। जिनके पास शक्ति थी बाहर की, वे विजेता होते चले गए। जिनके पास बाहर की कोई शक्ति नहीं थी, वे पराजित होते चले गए।

अकेले धर्म ने पूरब को दीन-हीन कर दिया बाहर से। अकेले विज्ञान ने पश्चिम को दीन-हीन कर दिया भीतर से। अकेला पूरब मर गया धर्म के एकांगीपन से। पश्चिम मर रहा है विज्ञान के एकांगीपन से। क्या इन दोनों के बीच कोई सिंथेसिस, कोई समन्वय संभव नहीं?

पूरब समाप्त हो गया है, पूरब मर चुका है। और पूरब को अब एक ही रास्ता सूझता है कि वह पश्चिम का अनुसरण करे। पूरब को बचने का अब कोई और उपाय नहीं दिखता है कि वह पश्चिम का अनुयायी हो जाए। और यदि उसे दिखाई पड़ रहा है कि पश्चिम का अनुयायी होकर भी वह कहां पहुंचेगा? जहां पश्चिम पहुंचा है वहीं तो पहुंच सकता है।

वह भी कोई सुखद आशा नहीं मालूम पड़ती। वह भी कोई नियति, वह भी कोई भविष्य बहुत कामना-योग्य नहीं प्रतीत होता। लेकिन और कोई विकल्प नहीं दिखता। पश्चिम भी ऐसी जगह पहुंच गया है जहां वह पूरब का अनुयायी हो जाना चाहता है।

यह बड़े मजे की घटना घट गई है। पश्चिम के वैज्ञानिक का आदर पूरब में बढ़ता जाता है, पूरब के संन्यासियों का आदर पश्चिम में बढ़ता चला जाता है। यह कुछ बात ऐसी हो गई है जैसा एक गांव में एक बार हुआ था।

एक गांव में दो बहुत बड़े विद्वान थे। एक आस्तिक था, एक नास्तिक था। उन दोनों में भारी विवाद था। उनके विवाद से गांव परेशान आ गया था।

विद्वानों से गांव अक्सर परेशानी में पड़ जाते हैं।

वह गांव बहुत परेशान हो गया था। वह ऊब गया था, वह घबड़ा गया था। क्योंकि वे दोनों किसी को भी चैन नहीं लेने देते थे। वह आस्तिक आस्तिकता समझाए चला जाता था, नास्तिक नास्तिकता समझाए चला जाता था। लोगों का मन और भी उलझन में पड़ गया था। कुछ साफ नहीं रहा था कि क्या सच है? क्या झूठ? वे गांव के लोग जब बहुत घबड़ा गए, और उनकी शांति और उनकी नींद हराम हो गई, और वे दोनों विद्वान उनका पीछा करने लगे, तो उन्होंने आकर उन दोनों से प्रार्थना की कि हमारी प्रार्थना है: यह सारा गांव इकट्ठा हुआ जाता है, आप दोनों विवाद कर लें। और जो जीत जाए हम उसी के साथ हो जाएंगे। हम उपद्रव में नहीं पड़ना चाहते।

अंततः एक पूर्णिमा की रात्रि उन विद्वानों का विवाद हुआ। सारा गांव इकट्ठा हो गया। आस्तिक ने आस्तिकता के लिए बड़े शक्तिशाली प्रमाण दिए, बड़े तर्क दिए। नास्तिक ने भी उतने ही शक्तिशाली प्रमाण दिए, उतने ही तर्क दिए।

तर्क के साथ यह मजा है कि वह किसी का भी प्रमाण बन सकता है और किसी का भी साथी बन सकता है। तर्क वेश्या जैसा है। वह किसी के भी साथ हो सकता है। वह किसी का नहीं है।

दोनों ने बहुत तर्क दिए, बहुत प्रमाण दिए। सुबह होते-होते एक अदभुत घटना घट गई। उस गांव में आस्तिक नास्तिक से प्रभावित हो गया, नास्तिक आस्तिक से प्रभावित हो गया। गांव की मुसीबत वही बनी रही। दूसरे दिन आस्तिक नास्तिक हो गया, नास्तिक आस्तिक हो गया। और गांव की पंचायत वही रही, वह फिर विवाद चलने लगा। वे फिर दोनों समझाने निकल पड़े।

ऐसी हालत आज दुनिया में हुई जा रही है। पूरब पश्चिम हो जाएगा और पश्चिम पूरब हो जाएगा। और बेवकूफी वही की वही रहेगी। आदमी उतना ही परेशान रहेगा। यहां आइंस्टीन प्रभावी होते चले जाते हैं, वहां विवेकानंद प्रभावी होते चले जाते हैं। लेकिन पागलपन वही रहेगा, उससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। क्योंकि विवेकानंद भी किसी अधूरी संस्कृति के पक्षपाती हैं और आइंस्टीन भी किसी अधूरी संस्कृति का पक्षपाती।

जिस अति से हम ऊब जाते हैं उससे हम दूसरी अति पर जाने को उत्सुक हो जाते हैं। गरीब आदमी गरीबी से ऊब जाता है अमीर होने की कोशिश करने लगता है। जो बहुत अमीर हो जाते हैं, वे अमीरी से ऊब जाते हैं, फकीर हो जाते हैं। महावीर और बुद्ध दोनों राजपुत्र थे, वे फकीर हो गए। फकीर अमीर होना चाहता है, अमीर गरीब होना चाहता है। अमीर अमीरी से ऊब जाता है, गरीब गरीबी से ऊब जाता है। आस्तिक आस्तिकता से ऊब जाते हैं, नास्तिक नास्तिकता से ऊब जाते हैं।

पूरब पूरब से ऊब गया, पश्चिम पश्चिम से ऊब गया। धार्मिक लोग धर्म से ऊब गए हैं, वैज्ञानिक लोग विज्ञान से ऊब गए हैं। और वे अति बदल लेना चाहते हैं। और आदमी का मन घड़ी के पेंडुलम की तरह है। एक एक्स्ट्रीम से दूसरी एक्स्ट्रीम पर चला जाता है, फिर दूसरी एक्स्ट्रीम पर चला जाता है। बीच में कभी भी नहीं रुकता है।

इससे बहुत खुश होने की जरूरत नहीं है। अगर पूरब का एकाध योगी पश्चिम में चला जाता है और वहां के छोेकरे उसके पीछे गिरोह बना कर घूमने लगते हैं, इससे बहुत खुश मत हो जाना। यह वही पागलपन का लक्षण है, जैसे आपके

छोकरे विज्ञान के पीछे घूम रहे हैं। ऐसे उनके छोकरे योगियों के पीछे घूम रहे हैं। इसमें कोई खास खूबी की और आदर की और इज्जत की कोई भी बात नहीं है। आपके लड़के अगर सिनेमागृहों के पास भीड़ कर रहे हों और पश्चिम के लड़के अगर मंदिरों के आस-पास इकट्ठे होने लगें, तो बहुत हैरान मत हो जाना। ये एक सी बातें हैं, इनमें कोई भी भेद नहीं है। उनका मन उनकी अति से ऊब गया, आपका मन आपकी अति से ऊब गया है। लेकिन अब तक अति से किसी का भी मन नहीं ऊबा है। तो एक अति से हम दूसरी अति को चुन लेते हैं।

मैं यह कहना चाहता हूं, एक ज्यादा सिंथेटिक कल्चर, एक ज्यादा समन्वित संस्कृति, एक ऐसी सभ्यता विकसित होनी जरूरी है जो अतिवादी न हो, जो एक्सट्रीमिस्ट न हो। जो संतुलन, समन्वय और मध्य पर खड़े होने की सामर्थ्य रखती हो। जो विज्ञान को उसकी जगह दे सके और धर्म को उसकी जगह दे सके। जो इस बात को स्वीकार कर सके कि विज्ञान का अपना मूल्य है, विज्ञान असार नहीं है। संसार का अपना मूल्य है और संसार माया नहीं है। और जो इस बात को भी स्वीकार कर सके कि संसार के सत्य होने के बावजूद भी संसार से ऊपर भी सत्य है। परमात्मा इस कारण व्यर्थ नहीं है कि संसार सत्य है। परमात्मा इस कारण और भी सत्य है। संसार भी जब सत्य है तो परमात्मा इस कारण और भी गहरे सत्य को उपलब्ध होता है।

परमात्मा और संसार के बीच का जो विरोध और खाई है, वह समाप्त होनी चाहिए। मनुष्य के जीवन में जो सबसे बड़ा दुर्भाग्य सिद्ध हुआ है, जो सबसे बड़ी दुर्घटना हुई है वह यह कि हमने सत्य और संसार के बीच एक बड़ी खाई खोद रखी है। जो आदमी ईश्वर की तरफ जाना चाहता है वह संसार को छोड़ कर भागता है। वह कहता है संसार तो असार है, संसार तो सपना है, संसार तो माया है--छोड़ कर भागता है।

हालांकि उसका छोड़ कर भागना ही यह बताता है कि संसार असार नहीं है, संसार सपना नहीं है। क्योंकि सपनों को छोड़ कर भागने की कोई भी जरूरत नहीं रहती। जो असार है, उससे भागने की कोई भी जरूरत नहीं है। जो है ही नहीं, उससे भागने की कोई जरूरत है?

एक आदमी कहे कि मैं भूत-प्रेत नहीं मानता हूं, वे होते ही नहीं, और भाग रहा है कि भूत-प्रेतों से बचने के लिए भाग रहा हूं। हम क्या कहेंगे? कि या तो यह आदमी पागल है या यह जो कह रहा है उस पर इसका विश्वास नहीं है। एक आदमी कहता है कि सब संसार माया है, फिर भी कहता है, मैं संसार त्याग दिया हूं। जो नहीं है उसका त्याग कैसे हो सकता है?

नहीं, लेकिन संसार है। चाहे उसे भोगो, चाहे उसे त्यागो। चाहे उसमें डूबो, चाहे उससे भागो--वह है। उसके होने को नहीं पोंछा जा सकता।

एक भूल यह संन्यासी करता है, जो कहता है कि संसार असार है, इसे मैं छोड़ता हूं। मैं तो परमात्मा का प्यारा हूं, मैं परमात्मा की तरफ जाता हूं। ठीक इससे उलटी भूल वह जो पदार्थवादी है, वह करता है। वह कहता है: संसार सार है, संसार सार्थक है।

और जब संसार सार है तो परमात्मा नहीं हो सकता? क्योंकि परमात्मा जो मानता है, वह कहता है, संसार असार है। संसार की असारता पर वह परमात्मा के प्रमाण को मानता है। तो जो आदमी संसार में सार देखता है, वह परमात्मा को अप्रमाण मान ले तो कोई आश्चर्य नहीं।

ये दोनों तर्क एक से हैं। जिन लोगों ने संसार को माया कहा, उन्हीं लोगों ने परमात्मा को झूठा सिद्ध करवाने की कोशिश भी तय कर दी। क्योंकि जिन लोगों को संसार सार्थक दिखा, सत्य दिखा, सब्स्टेंशियल दिखा, फिर उनको लगा कि ठीक है, फिर इनका परमात्मा झूठा होना चाहिए कि दो में से एक ही बात सच हो सकती है।

यह बात गलत है कि दोनों में से एक ही बात सच हो सकती है। दोनों बातें एक साथ सच हो सकती हैं और दोनों बातें एक साथ झूठ भी हो सकती हैं। दो में से एक ही सच हो इसका कोई सवाल नहीं है।

जीवन में अनेक तरह के सत्य हैं। पदार्थ का अपना सत्य है; पैसे का अपना सत्य है। प्रेम का अपना सत्य है; परमात्मा का अपना सत्य है। सत्यों में भी मूल्यांकन है कि हम निरंतर ऊपर से ऊपर सत्य की खोज में बढ़ते चले जाएं। लेकिन एक सत्य कोई दूसरे का खंडन नहीं है। सपनों की अपनी सच्चाई है और जागने की अपनी सच्चाई है। नींद की अपनी सच्चाई है और होश की अपनी सच्चाई। इन सच्चाइयों में कोई ऐसा विरोध नहीं है कि एक है तो दूसरा नहीं हो सकता है।

और जिस दिन कोई व्यक्ति इन दोनों सच्चाइयों की गहरी से गहरी सीमा को छू लेता है उस दिन तो वह हंसता है, उस दिन तो वह हैरान हो जाता है। उस दिन वह पाता है कि जिनको मैंने दो समझा था, वे एक ही सत्य को दो तरफ से देखने के उपाय थे। वे दो दृष्टियां थीं, वे दो सत्य नहीं थे। एक ही चीज को बहुत तरह से देखा जा सकता है।

बुद्ध एक रात्रि प्रवचन किए। रोज का उनका नियम था कि प्रवचन के बाद वे भिक्षुओं को कहते थे कि अब आप जाएं और रात्रि के अंतिम कार्य में संलग्न हों। वह रात्रि का अंतिम कार्य था--रात्रि का ध्यान। भिक्षु जब विदा होते, तो रात्रि का ध्यान करते और सो जाते। तो बुद्ध रोज फिर इतना ही कहते थे। इसको कहने की रोज जरूरत न थी कि अब आप ध्यान करें। वे इतना ही कहते थे कि अब आप जाएं, और रात्रि के ध्यान में संलग्न हों--यह नहीं कहते थे। इतना ही कहते थे, रात्रि का अंतिम कार्य करें।

उस रात उस सभा में एक चोर भी आया हुआ था, एक वेश्या भी आई हुई थी। जैसे ही बुद्ध ने कहा कि अब आप जाएं और अपना रात्रि का कार्य शुरू करें। वैसे ही चोर को खयाल आया कि अरे, मैं कहां बैठा हुआ हूं, रात हो गई और अपने काम का समय आ चुका? वेश्या ने भी सोचा कि बहुत रात हो गई, अब मेरी दुकान के खुलने का वक्त आ गया, मैं जाऊं। और भिक्षु ध्यान पर चले गए।

एक ही वाक्य था। एक ही बात कही गई थी। लेकिन तीन अर्थ हो गए उस बात के। तीन देखने वाले थे। तीन देखने की दृष्टियां थीं। तीन तरफ से वह बात देखी गई और अपना-अपना अर्थ ले लिया गया।

जीवन को हम जिस दृष्टि से देखते हैं, वह वैसा दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। जो लोग पदार्थ की दृष्टि से देखते हैं, उन्हें जीवन पदार्थ दिखाई पड़ता है। जो लोग चैतन्य की दृष्टि से देखना शुरू करते हैं, उन्हें जीवन चैतन्य दिखाई पड़ने लगता है। यह हम पर निर्भर है कि हम किस भांति देखते हैं।

एक कवि एक फूल को देखता है, वह कहता है, बहुत सुंदर है। उसके चित्त में सौंदर्य की न मालूम कितनी प्रतिमाएं घूम जाती हैं। हो सकता है उसे अपनी प्रेयसी का चेहरा याद आ जाए। हो सकता है उसे आकाश के तारे उन फूलों में चलते दिखाई पड़ जाएं। हो सकता है किसी झील पर उसे किसी लहर की स्मृति उसे फूल की पंखुड़ियों में दिख जाए। हो सकता है उस सुगंध के साथ उसे दूर की सुगंधों का बोध आ जाए। हो सकता है उस फूल के साथ न मालूम किन सपनों का गीत उसके मन में खुल जाए। फूल वहीं रह जाए, वह सपनों की दुनिया में चला जाए।

एक वैज्ञानिक फूल को देखता है, उसे न कोई सौंदर्य दिखाई पड़ता है, न कोई चांद-तारे दिखाई पड़ते हैं। उसे तो कुछ कैमिकल्स दिखाई पड़ते हैं। उससे अगर कोई कहे कि फूल बहुत सुंदर है, तो वह पूछेगा, यह सौंदर्य कहां है? मैं तो अपनी प्रयोगशाला में जाकर, काट-पीट करके देखता हूं तो कोई सौंदर्य नहीं मिलता। हां, कुछ कैमिकल्स मिलते हैं, कुछ खनिज मिलते हैं, कुछ और मिलता है। लेकिन सौंदर्य तो, हमने अपनी प्रयोगशाला में बहुत जांच-बीन की, आज तक मिला नहीं है।

फूल में सौंदर्य प्रयोगशाला में मिल भी नहीं सकता, तो कवि झूठा हो जाता है। लेकिन कवि को सौंदर्य ही मिलता है उस फूल में। उसे कोई खनिज नहीं मिलते, कोई कैमिकल, कोई रसायन नहीं मिलती, तो क्या वैज्ञानिक झूठा हो जाता है? फूल बड़ी सत्ता है। उसे हजार ढंग से देखने के उपाय हैं।

एक-एक चीज इतनी अनंत है, छोटी से छोटी चीज इतनी अनंत है कि उसे अनंत दृष्टियों से देखने के मार्ग सदा खुले हुए हैं। एक दृष्टि दूसरी दृष्टि को गलत नहीं कर जाती। एक दृष्टि केवल इतनी ही कहती है कि मैंने किस भांति देखा। जब

कवि कहता है, मुझे फूल में सौंदर्य दिखाई पड़ा, तो वह यह नहीं कहता है कि फूल में सौंदर्य है। वह यह कह रहा है कि मैंने फूल को कवि की तरह देखा। और जब वैज्ञानिक कहता है कि मुझे फूल में खनिज मिले, रसायन मिली, कैमिकल्स मिले, तब वह यह नहीं कह रहा है कि फूल में कैमिकल्स ही हैं। तब वह यह कह रहा है कि मैंने फूल को एक वैज्ञानिक की तरह देखा है। ये हमारे देखने के ढंग हुए।

विज्ञान देखने के ढंग का एक रूप है; धर्म जीवन को देखने का दूसरा रूप है। और दोनों रूप जीवन के देखने की समृद्धि को बढ़ाते हैं। उन दोनों में से एक भी विदा नहीं हो जाना चाहिए। विज्ञान जिस दृष्टि से जीवन को देखता है, उससे शक्ति बढ़ती है। धर्म जिस दृष्टि से जीवन को देखता है, उससे शांति बढ़ती है।

शक्ति भी चाहिए और शांति भी चाहिए। अकेली शक्ति खतरनाक है। और अशांत आदमी के हाथों में तो बहुत खतरनाक है। अशांत आदमी तो कमजोर हो तो अच्छा, अशांत आदमी शक्तिशाली हो तो खतरनाक है। क्योंकि अशांति के हाथ में शक्ति मिल जाए तो उपद्रव बढ़ेंगे।

नादिरशाह हिंदुस्तान की तरफ आता है। एक राजधानी में रुका और एक ज्योतिषी उससे मिलने आया। उस ज्योतिषी से नादिर ने पूछा कि मैं बहुत सोता हूं, मुझे नींद बहुत आती है। मैं कोई बारह-तेरह घंटे, चैदह घंटे सोता हूं। लोग कहते हैं इतना सोना बहुत बुरा है, आपका क्या खयाल है? आप बहुत बुद्धिमान आदमी हैं। आपका क्या खयाल है? उस ज्योतिषी ने कहाः बुरे आदमी का ज्यादा सोना अच्छा होता है। अच्छे आदमी का ज्यादा जागना अच्छा होता है। आप और सोएं और चैबीस ही घंटे सोए रहें तो बहुत अच्छा है। क्योंकि आप जैसा आदमी जितनी देर जागता है उतनी देर दुनिया में उपद्रव बढ़ते हैं। आपके जागने से कोई हित नहीं होता किसी का भी; न मुल्क का हित होता है, न किसी और का हित होता है।

उस ज्योतिषी ने कहा कि बुरा आदमी जितना सोया रहे उतना अच्छा। यह अच्छे आदमी के लिए कहा गया है कि वह जागा रहे। यह बुरे आदमी के लिए नहीं कहा गया है। शक्ति उन हाथों में हो जो शांत हैं, तब तो ठीक। अन्यथा कमजोर होना बुरा नहीं है। अशांत आदमी के हाथ में शक्ति आत्मघाती और परघाती सिद्ध होती है।

विज्ञान ने शक्ति दे दी और शांति नहीं दी, वह घातक सिद्ध हुई जा रही है। दो महायुद्ध हमने देख लिए, तीसरे की तैयारियां हैं। और तीसरा खतरनाक होगा, बहुत खतरनाक होगा।

आइंस्टीन से मरने के पहले किसी ने पूछा था कि तीसरे महायुद्ध के संबंध में आप कुछ बताएंगे? आइंस्टीन ने कहाः तीसरे के संबंध में बताना बहुत कठिन है। हां, चैथे के संबंध में कुछ बता सकता हूं। सुनने वाला बहुत हैरान हुआ। उसने कहाः आप तीसरे के बाबत बता नहीं सकते, चैथे के बाबत क्या बता सकते हैं? आइंस्टीन ने कहाः चैथे के बाबत एक बात निश्चित ही कही जा सकती है कि चैथा महायुद्ध कभी नहीं होगा। क्योंकि तीसरे में सभी आदमी समाप्त हो जाने को हैं। तीसरे के बाबत कुछ नहीं कहा जा सकता कि क्या होगा। तीसरे की जो तैयारी है, वह बहुत हैरान करने वाली है। मनुष्यता को ही नहीं, समस्त जीवन को नष्ट कर देने के हमने उपाय कर लिए हैं। जीवन को ही नहीं, हो सकता है पृथ्वी भी बिखर जाए और टूट जाए।

तो एक छोटी सी कल्पना आपको दूं तो खयाल हो सके कि अशांत हाथ में कितनी ताकत इकट्ठी हो गई है। इस समय पृथ्वी पर कोई पचास हजार उदजन बम तैयार हैं। पचास हजार की संख्या से हमें कुछ पता नहीं चलता कि पचास हजार उदजन बम का क्या अर्थ होता है?

एक उदजन बम चालीस हजार वर्गमील में समस्त जीवन को नष्ट करता है, समस्त जीवन को। मनुष्य के नहीं, पशु के, पौधे के, छोटे-छोटे बैक्टीरिया और अमीबा, छोटे-छोटे कीटाणुओं को--सबको नष्ट करता है। चालीस हजार वर्गमील में एक उदजन बम। पचास हजार उदजन बम इतने हैं जितने से हमारे बराबर पृथ्वियां--सात, नष्ट की जा सकती हैं--एक नहीं। या ऐसा समझ लें कि एक-एक आदमी को अगर हमें मारना हो, तो हम सात-सात बार मार सकते है। वैसे एक आदमी एक ही दफा में मर जाता है, इतना कमजोर है। अब तक ऐसा सुना ही नहीं गया कि एक आदमी को दुबारा मारना पड़ा हो। मर गया

तो एक ही दफा में मर गया, नहीं मरा तो बात दूसरी है। लेकिन एक दफा में ही मर जाता है, दुबारा मारने की जरूरत नहीं पड़ती।

लेकिन हम बहुत होशियार लोग हैं, सब इंतजाम कर लेना ठीक है। कोई एक दफा में बच जाए तो दुबारा मार सकते हैं, तिबारा मार सकते हैं। सात बार का इंतजाम काफी है। सात बार में कोई बच सकेगा, इसकी कोई कल्पना नहीं की जा सकती। तो आदमी ने पूरा, सब कैल्कुलेशन, सब हिसाब लगा लिया है, पूरा इंतजाम कर लिया है। अब तैयारी कर रहे हैं कि हम कब सबको खत्म कर लें।

एक उदजन बम क्या करता है? मर जाए आदमी, यह भी बहुत कठिन बात नहीं है। न बहुत हैरान होने की बात है। लेकिन कितनी पीड़ा से गुजरेगा, इसकी भी हम कल्पना नहीं कर सकते।

सौ डिग्री पानी हम गर्म करें, सौ डिग्री पर तो पानी भाप बन कर उड़ता है। उस पानी में हम किसी को डाल दें, उबलते हुए पानी में, तो उसको क्या होगा? लेकिन सौ डिग्री गर्मी कोई बहुत गर्मी नहीं है। पंद्रह सौ डिग्री गर्मी पर लोहा भी पिघल जाता है। उस लोहे में किसी को डाल दें, पिघले हुए लोहे में, लोहे में...तो उसका क्या होगा? क्या उसके प्राणों को अनुभव होंगे? कौन से आनंद उसको पता चलेंगे? उसका थोड़ा सोचें। किस परमात्मा की उसे उस वक्त याद आएगी? लेकिन पंद्रह सौ डिग्री गर्मी कोई बड़ी गर्मी नहीं है। पच्चीस सौ डिग्री गर्मी पर लोहा भी भाप बन कर उड़ने लगता है। उसमें किसी को डाल दें, तो उसको क्या होगा? लेकिन पच्चीस सौ डिग्री गर्मी भी कोई बड़ी गर्मी नहीं है।

एक उदजन बम से जो गर्मी पैदा होती है, वह होती है दस करोड़ डिग्री। इस दस करोड़ डिग्री गर्मी की भट्टी में हम आदमी को डालने का इंतजाम कर लिए हैं। यह गर्मी उतनी ही है जितनी सूरज पर। तो अब तक सूर्य देवता वगैरह को आप नमस्कार करते थे, वह बहुत दूर है। हमने इंतजाम किया है कि वह आपके घर ही आ जाए, आपसे मिलन हो जाए, जिससे मुलाकात ही हो जाए सूर्य भगवान से आपकी--इसका वैज्ञानिकों ने इंतजाम कर दिया है।

यह जो इतना बड़ा नरक हम पृथ्वी को बनाने का आयोजन कर रहे हैं, यह किसलिए और क्यों? यह अशांत मन के हाथ में शक्ति पहुंच गई है। शांत मन के हाथ में यह शक्ति पहुंचती, तो आज पृथ्वी स्वर्ग बन सकती है। जिसके लिए ऋषि-मुनियों ने सपने देखे थे। कहीं आकाश में, स्वर्ग में जाने की अब कोई जरूरत नहीं। मनुष्य के हाथ में इतनी बड़ी ऊर्जा, इतनी बड़ी शक्ति पर हाथ पड़ गया है उसका कि वह इस सारी पृथ्वी को पहली दफा स्वर्ग बना सकता है। आज पृथ्वी पर किसी के दरिद्र होने की कोई भी जरूरत नहीं है; सिवाय राजनीतिज्ञों की शैतानी के और कोई कारण नहीं है। आज पृथ्वी पर किसी के दीन-हीन, बीमार, कम उम्र होने की, असुंदर होने की, दुखी होने की, कष्ट में होने की कोई जरूरत नहीं है; सिवाय अशांत आदमियों के हाथ में शक्ति है, इसके अतिरिक्त।

आज पृथ्वी एक अनूठी जगह बन सकती है, इतनी शक्ति, इतनी ऊर्जा हमारे हाथ में है। आज पहली बार चांद-तारे हमारे हाथ में हैं। आज पहली बार पदार्थ के भीतर छिपी हुई सबसे बड़ी शक्ति हमारे हाथ में है। आज हम क्या कर सकते हैं इसका कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। लेकिन हम कुछ भी नहीं कर पा रहे हैं, क्योंकि अशांत आदमी के हाथ में ताकत है। वह कहता है, हम तो मरने की तैयारी करेंगे और मारने की तैयारी करेंगे।

अशांति हमेशा मृत्यु की आकांक्षा को जन्म देती है। अशांति हमेशा दूसरे को मारने की और खुद को मारने की चेष्टा में संलग्न करती है। अशांति सुसाइडल है, आत्मघाती है। और जब भी अशांत आदमी के हाथ में ताकत मिल जाएगी, तो पहले दूसरों को मारेगा। और अगर कोई मारने को नहीं मिला या कोई मरने को राजी नहीं हुआ, तो खुद को मारेगा। कोई न कोई रास्ता मारने का करेगा।

अशांति यात्रा है मृत्यु की तरफ।

विज्ञान ने शक्ति तो दे दी, लेकिन शांति विज्ञान के देने की सामर्थ्य नहीं है। उसका कोई सवाल ही नहीं है। उससे अपेक्षा भी नहीं करनी चाहिए। उससे मांग भी नहीं करनी चाहिए, वह कोई प्रश्न ही नहीं है। वह तो ऐसा है जैसे कोई गणित

से कहने लगे कि कविता भी आप ही हमें दो। तो गणित कविता कैसे देगा? गणित गणित देगा, गणित की अपनी जरूरत है। लेकिन गणित कविता नहीं दे सकता। या कोई कविता से कहने लगे कि हमें फैक्ट्री बना दो, तो कविता फैक्ट्री कैसे बनाएगी? कविता गीत दे सकती है, प्रेम दे सकती है, आनंद की पुलक दे सकती है, नृत्य दे सकती है, लेकिन फैक्ट्री कैसे देगी? ये तो पागलपन की बातें हैं। कोई कान से कहने लगे कि देखो, और कोई आंख से कहने लगे कि सुनो--वैसी ही बातें हैं। विज्ञान से अपेक्षा भी नहीं करने का सवाल है।

शांति तो देगा धर्म। शांति का विज्ञान धर्म है। और शक्ति का विज्ञान विज्ञान है। अंतस्चेतना कैसे शांत होती चली जाए? कितनी निर्विकार, कितनी आनंद को उपलब्ध होती चली जाए, इसकी जो चेष्टा और साधना है, वह धर्म है। लेकिन धर्म केवल शांति दे सकता है, शक्ति नहीं दे सकता।

अकेली शांति निर्बल कर देती है, कमजोर कर देती है। अकेली शांति एक तरह की इंपोटेंस पैदा करती है, एक तरह की नपुंसकता पैदा करती है। भारत जो इतना इंपोटेंट हो गया, उसका कोई और कारण नहीं है। भारत की इतनी दीनता, दरिद्रता और कमजोरी में भारत के उन धार्मिक लोगों का हाथ है जिन्होंने विज्ञान का निषेध करके धर्म को विकसित किया। कमजोर हो ही जाएगा। और शांत आदमी कमजोर हो जाए, यह उतना ही खतरनाक है जितना अशांत आदमी शक्तिशाली हो जाए--एक सी बातें हैं ये दोनों।

शांत आदमी कमजोर हो जाए, यह सारी दुनिया के लिए खतरनाक है। क्योंकि तब शांत आदमी दुनिया में परिवर्तन की सारी सामथ्र्य खो देता है। तब अच्छा आदमी, भला आदमी दुनिया को बदलने की सारी हिम्मत खो देता है। तब उसके पास एक ही काम रह जाता है कि अपने मंदिरों में बैठ जाए और भगवान की प्रार्थनाएं करता रहे। और वह भी तभी तक, जब तक कोई ताकतवर आदमी आकर उसके भगवान की मूर्ति को तोड़-फोड़ कर न फेंक दे, तभी तक प्रार्थनाएं करता है।

और जब कोई धीरे-धीरे कमजोर होता चला जाता है तो यह भी खयाल में ले लें कि कमजोर आदमी बहुत दिन तक शांत भी नहीं रह सकता। दीन-हीन आदमी बहुत दिन तक शांत भी नहीं रह सकता। कष्ट में पड़ा हुआ आदमी बहुत दिन तक शांत भी नहीं रह सकता। तब फिर अशांति का जन्म शुरू हो जाएगा। और एक चक्कर शुरू होगा। अशांति का जन्म होगा तो विज्ञान की खोज शुरू हो जाएगी। और विज्ञान शक्ति लाएगा, और अशांत आदमी के हाथों में शक्ति आ जाएगी। यह चक्कर आज तक पूरी मनुष्यता को पीड़ित किए रहा है। एक विसियस सर्किल है। एक दुष्चक्र है। जिसमें आदमी पड़ गया। जैसे ही आदमी के हाथ में ताकत आती है, वह शांत होने की कोशिश शुरू कर देता है।

हिंदुस्तान में जब शांति की और धर्म की लहर चली, उस वक्त हिंदुस्तान बहुत समृद्ध था। बुद्ध और महावीर का वक्त हिंदुस्तान में स्वर्ण-वक्त था। बहुत समृद्ध था। एकदम सोने की चिड़िया थी। उस वक्त शांति की लहर और धर्म की बातें थीं।

शक्तिशाली आदमी शांत होने की कोशिश में लग जाए तो धीरे-धीरे निर्बल हो जाता है। और निर्बल आदमी अशांत होता है तो अशांत होते से ही शक्ति की खोज में लग जाता है।

पूरब समृद्ध था, शांति की खोज की, दरिद्र हो गया। पश्चिम दरिद्र था, शक्ति की खोज की, समृद्ध हो गया। लेकिन अब तक शक्ति और शांति एक साथ निर्मित नहीं की जा सकी है। दोनों प्रयोग असफल हो गए। विज्ञान भी असफल हुआ, उससे हिरोशिमा और नागासाकी पैदा हुए। और अब तीसरा महायुद्ध पैदा होगा। धर्म भी अकेला असफल हो गया, उससे यह भारत के दीन-हीन, दरिद्र भिखारी पैदा हुए, गुलाम पैदा हुए, बड़े से बड़ा देश छोटे-छोटे देशों के हाथों में गुलाम बन गया। उनके चरण चूमता रहा, वे उसकी छाती पर जूते रख कर चलते रहे, वह पड़ा रहा। वह राम-राम जपता रहा, वह ओम-ओम करता रहा।

ये दोनों प्रयोग असफल हो गए, जो अब तक आदमी ने किए हैं। एक तीसरे प्रयोग में सारी संभावना और सारा भविष्य है। और वह तीसरा प्रयोग है कि धर्म और विज्ञान के बीच सारा विरोध समाप्त हो। विरोध का कोई कारण भी नहीं है, कोई जगह भी नहीं है, कोई वजह भी नहीं है। धर्म और विज्ञान एक संस्कृति के अंग बनें। यह कब होगा और कैसे होगा?

जब तक हम जगत और परमात्मा के बीच विरोध मानते हैं, यह नहीं हो सकता है। पदार्थ और परमात्मा के बीच एक गहरा संबंध, एक ही दिशा में, एक ही चीज के, एक ही सिक्के के--वे दो पहलू हैं। इस बात की स्वीकृति, धर्म संसार को असार कहना बंद कर दे, विज्ञान परमात्मा को व्यर्थ कहना बंद कर दे। और दोनों की सार्थकता संयुक्त हो, और एक साथ हो। शांति और शक्ति की एक साथ खोज हो। तो एक नये मनुष्य का और एक नई संस्कृति का जन्म हो सकता है।

मेरे देखे, दोनों में कोई भी विरोध नहीं है; न विरोध का कोई कारण है। विरोध हमारी नासमझी पर खड़ा हुआ था। और या तो हम अपनी नासमझी बचा सकते हैं अब, या अपने को बचा सकते हैं। दोनों अब एक साथ नहीं बच सकतीं। पूरब को, पूरब के लोगों को जगतगुरु होने का खयाल छोड़ देना चाहिए। वे पागलपन की बातें हैं। अधूरी संस्कृतियां जगतगुरु नहीं हो सकतीं। पश्चिम के लोगों को भी जगतगुरु होने का खयाल छोड़ देना चाहिए। अधूरी संस्कृतियां जगतगुरु नहीं हो सकतीं।

अब तो एक संस्कृति पैदा होगी, जो न पूरब की होगी; न पश्चिम की होगी। अब तो एक संस्कृति पैदा होगी जो न विज्ञान की होगी; न धर्म की होगी। अब तो एक संस्कृति पैदा होगी जो पूरे मनुष्य की होगी, समग्र मानव की होगी; इंटिग्रेटिड, पूरे मनुष्य की होगी। मनुष्य की संस्कृति पैदा होने का पहली बार अवसर आया है। और यह अवसर तभी सफल हो सकता है जब विज्ञान और धर्म के बीच कोई समन्वय पैदा हो सके।

विज्ञान एक अति है, धर्म दूसरी अति। धर्म और विज्ञान संयुक्त, संश्लिष्ट, मध्य-बिंदु होंगे, वह गोल्डन मीन होगी। वह बीच का मज्झिम निकाय होगा, वह बीच का रास्ता होगा, वह समन्वय होगा।

एक छोटी सी घटना और मैं अपनी बात पूरी करूंगा।

बुद्ध के समय में एक राजकुमार बुद्ध के पास आकर दीक्षित हुआ, संन्यासी हुआ। राजकुमार अक्सर संन्यासी हो जाते हैं। एक अति से दूसरी अति पर चले जाते हैं। वह राजकुमार बहुत विलासी प्रवृत्ति का युवक था। कहते हैं, वह रास्तों पर भी चलता तो पहले कालीन बिछा दिए जाते। वह कभी नंगी भूमि पर नहीं चलता था। वह जब महलों में चलता तो फूलों पर चलता। वह जब सीढ़िया चढ़ता तो नग्न स्त्रियां सीढ़ियों के किनारे खड़ी रहतीं, जिनके कंधों के सहारे लेकर वह ऊपर जाता। वह दीक्षित हो गया और संन्यासी हो गया। तो बुद्ध के भिक्षु बहुत हैरान हुए। यह इतने जोर का परिवर्तन कि जो आदमी शिखर पर था भोग के, वह एकदम योग के दूसरे शिखर पर आ जाएगा? उन्होंने बुद्ध को पूछा, तो बुद्ध ने कहाः आदमी का मन अतियों में चलता है। और इसलिए अक्सर यह होता है कि जो लोग भोग के शिखर पर होते हैं, वे योगी होेने की कल्पना करते रहते हैं। और जो लोग योगी हैं, वे भोगी होने के सपने देखते रहते हैं। यह अक्सर होता है।

अगर संन्यासियों के सपने निकाले जा सकें उनके दिमाग से, तो दुनिया बहुत हैरान हो जाएगी। अगर भोगियों के सपने निकाले जा सकें उनके दिमाग से, तो भी दुनिया बहुत हैरान हो जाएगी। कि जिस आदमी को हम इतना भोगी समझते थे, इसके मन में भी संन्यासी होने की कल्पनाएं दौड़ती रहती हैं। और जिस आदमी को हम इतना त्यागी समझते थे, इसके मन में भी भोग के ऐसे सपने उठते हैं। सपने सब्स्टीट्यूट हैं। जो हम बाहर करते हैं एक अति, दूसरी अति जो हम नहीं करते, उसके सपने चलते रहते हैं।

तो बुद्ध ने कहा, यह स्वाभाविक है। मैं तो सोचता ही था कि यह आदमी आज नहीं कल संन्यासी होगा। अब तुम देखना यह दूसरी अति पर जाएगा। और छह महीने के भीतर भिक्षुओं ने देखा कि वह दूसरी अति पर गया। दूसरे भिक्षु वस्त्र पहनते, उसने वस्त्र भी छोड़ दिए। दूसरे भिक्षु रास्ते पर चलते, पगडंडी पर चलते, राजपथ पर चलते जहां कांटे न होते। वह जान कर ऐसे रास्तों पर चलता जहां कांटे होते, जहां रास्ते न होते। उसके पैर लहूलुहान हो गए। उसके पैरों में फोले और घाव पड़ गए। उसका शरीर धूप में सूखने लगा। भिक्षु वृक्षों की छाया में ठहरते, वह भरी धूप में सूरज के नीचे बैठता। भिक्षु ठंड में गर्मी का सहारा खोजते, वह ठंड में, खुले में पड़ा रहता। छह महीने में उसका सुंदर शरीर सूख कर कांटा हो गया। छह

महीने बाद उसे पहचानना मुश्किल था कि यह वही राजकुमार है। छह महीने बाद तो वह बिलकुल ही दूसरा आदमी हो गया था। अत्यंत कुरूप हो गया था, बीमार, रुग्ण हो गया था।

बुद्ध उसके पास गए छह महीने बाद और उससे कहाः श्रोण, उसका नाम श्रोण था। मैं तुझसे एक बात पूछने आया हूं। मैंने सुना है कि जब तू राजकुमार था, तो तू वीणा बजाने में बहुत कुशल था। तो मैं तुझसे यह पूछने आया हूं कि अगर वीणा के तार बहुत ढीले हों, तो संगीत पैदा होता है या नहीं होता है? श्रोण ने कहाः वीणा के तार ढीले हों, तो संगीत कैसे पैदा होगा? तार ढीले हों, तो उनमें टंकार ही नहीं हो सकती, उनको चोट ही नहीं की जा सकती, उनमें प्रतिध्वनि नहीं पैदा की जा सकती। तार ढीले हों, तो ढीले तारों में कैसे संगीत पैदा हो सकता है?

तो बुद्ध ने कहाः अगर तार बहुत कसे हुए हों तो, तो संगीत पैदा होगा? तो श्रोण ने कहाः बहुत कसे तार टूट जाते हैं, उनमें भी संगीत पैदा नहीं होता। तो बुद्ध ने कहाः संगीत कब पैदा होता है? तो उस श्रोण ने कहाः संगीत तो तब पैदा होता है जब तार न तो कसे होते हैं, न ढीले होते हैं, एक ऐसी अवस्था भी है तारों की जब कहा जा सकता है कि न तार ढीले हैं, न तार कसे हैं। वह मध्य-बिंदु है। वहां तार उस जगह होते हैं जहां संगीत पैदा होता है।

तो बुद्ध ने कहाः वीणा का जो नियम है, मैं तुझसे कहने आया, जीवन का नियम भी वही है। जीवन में भी संगीत वहां पैदा होता है जहां न तो तार बहुत ढीले होते हैं, न तार बहुत कसे होते हैं।

एक तरफ विज्ञान के ढीले तार हैं, जिन्होंने मनुष्य की आत्मा को बिलकुल ढीला छोड़ दिया। एक तरफ धर्म के अत्यंत कसे हुए तार हैं, जिन्होंने मनुष्य की आत्मा को इतना कस दिया। और इन दोनों के बीच मर गया मनुष्य। इन दोनों के बीच टूट गई मनुष्य की वीणा। इन दोनों के बीच खो गया मनुष्य के जीवन का संगीत है।

मनुष्य के जीवन के तारों को वहां लाना है, जहां न तो वह पदार्थ की तरफ बहुत खिंचे होते हैं, न आत्मा की तरफ। जहां वे न तो भोग की तरफ दीवाने होते हैं, और न योग की तरफ। जहां वे उस मध्य-बिंदु पर होते हैं, जहां कहा जा सकता है कि यह मनुष्य न तो भोगी है, न योगी है। जहां कहा जा सकता है, यह मनुष्य न तो पदार्थवादी है, न परमात्मवादी है। जहां मनुष्य बिलकुल मध्य के बिंदु पर होता है, वहां जीवन का परिपूर्ण संगीत उपलब्ध होता है। और ऐसे परिपूर्ण संगीत के अनुभव में ही वह जानता है कि पदार्थ भी परमात्मा है, परमात्मा भी पदार्थ है।

जीवन में जागरूकता

जीवन क्रांति की दिशा-3

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी कहानी से आज की चर्चा आरंभ करूंगा।

एक पूर्णिमा की रात में एक छोटे से गांव में बड़ी अदभुत घटना घट गई थी। कुछ जवान लड़कों ने शराबखाने में जाकर शराब पी ली थी, और जब वे शराब के नशे में मदमस्त हो गए थे, और शराब-गृह से बाहर निकले थे, तो उन्हें ऊपर चांद की बरसती हुई चांदनी में यह ख्याल आ गया कि हम जाएं नदी पर और नौका विहार करें।

रात बड़ी सुंदर थी और मन उनके नशे से भरे हुए थे। वे गीत गाते हुए नदी के किनारे पहुंच गए। नाव वहां बंधी थी। मछुवे नावें बांध कर अपने घर जा चुके थे। रात आधी हो गई थी। वे युवक एक नाव में सवार हो गए। उन्होंने पतवारें उठा लीं और नाव को खेना शुरू कर दिया। फिर वे देर रात तक नाव खेते रहे। सुबह होने के करीब आ गई। सुबह की ठंडी हवाओं ने उन्हें सचेत किया। उनका नशा कुछ कम हुआ और उन्होंने सोचा कि हम न मालूम कितनी दूर निकल आए हैं। आधी रात से हम नाव चला रहे हैं, पतवार चला रहे हैं। न मालूम किनारे और गांव से कितने दूर आ गए हैं? उनमें से एक ने सोचा कि उचित है कि मैं नीचे उतर कर देख लूं कि हम किस दिशा में आ गए हैं? क्योंकि नशे में जो चलते हैं उन्हें दिशा का कोई भी पता नहीं होता है। और हम कहां पहुंच गए हैं, हम किस जगह हैं, जब तक हम इसे न समझ लें तब तक हम वापस भी कैसे लौटेंगे? और फिर सुबह होने के करीब है, गांव में लोग चिंतित हो जाएंगे।

एक युवक नीचे उतरा और नीचे उतर कर जोर से हंसने लगा। दूसरे युवकों ने पूछा: हंसते क्यों हो, बात क्या है? उसने कहा: तुम भी नीचे उतर आओ और तुम भी हंसो। वे सारे लोग नीचे उतरे और सारे लोग ही हंसने लगे। आप पूछेंगे, बात क्या थी? अगर आप भी उस नाव में होते और नीचे उतरते तो आप भी हंसने लगते। बात ही कुछ ऐसी थी। वे वहीं के वहीं खड़े थे, नाव कहीं भी नहीं गई थी। असल में वे नाव की जंजीर खोलना भूल गए थे। नाव की जंजीर किनारे से बंधी थी। उन्होंने बहुत पतवार चलाई और बहुत श्रम किया, लेकिन सारा श्रम व्यर्थ हो गया था, क्योंकि किनारे से बंधी हुई नावें कोई यात्रा नहीं करतीं।

मैंने कल दो दिनों की चर्चाओं में..मनुष्य की आत्मा की नाव किन खूंटियों से बंधी है, दो खूंटियों की आपसे बात की। वे लोग जो ज्ञान से बंध जाते हैं और जिनके जीवन में विस्मय नहीं होता, उनकी आत्मा की नाव कभी परमात्मा तक नहीं पहुंच पाती। वे वहीं खड़े रह जाते हैं जहां से यात्रा शुरू होती है। श्रम वे बहुत करते हैं, पतवार वे बहुत चलाते हैं, समय वे बहुत लगाते हैं। लेकिन नाव कहीं बढ़ती नहीं, वे वहीं रुक जाते हैं।

जिन लोगों की जीवन के प्रति दृष्टि दुख की होती है, संताप की होती है, जो जीवन को अंधकारपूर्ण आंखों से देखते हैं, जिन्हें जीवन के प्रति अहोभाव का, आनंद के भाव का कोई अनुभव नहीं होता, जो जीवन को आनंद की आंखों से देखने की क्षमता और पात्रता नहीं जुटा पाते हैं, उनकी नाव भी किनारे से ही बंधी रह जाती है, वे भी कभी जीवन के सागर में नौका को खे नहीं पाते हैं।

आज मैं तीसरी खूंटी की बात करने को हूं। और कौन से लोग बंधे रह जाते हैं? जीवन को दुख से देखने वाले, जीवन को अंधकारपूर्ण दृष्टि से देखने वाले, जीवन के सत्य को शास्त्रों से सीख लेने वाले, स्वयं के अज्ञान को शब्दों और सिद्धांतों में छिपा लेने वाले, ये बंधे रह जाते हैं। और कौन बंधा रह जाता है? आज उस आखिरी खूंटी की भी मुझे बात करनी है जिससे आदमी बंधा रह जाता है। और जो उस खूंटी से बंधा रहता है वह एक कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगाता है, घूमता है, एक ही जगह पर घूमता है, घूमता है और घूमते-घूमते नष्ट और समाप्त हो जाता है। लेकिन किसी कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगाता है। सारा जीवन इन्हीं चक्करों में व्यर्थ हो जाता है।

एक गांव में मैं गया था। एक बैल वहां कोल्हू चलाने का जीवन भर काम करता रहा। फिर वह बूढ़ा हो गया। और बैल के मालिकों ने उसे काम के योग्य न समझ कर छोड़ दिया था। खुला वह घूमता रहता था। लेकिन मैं बड़ा हैरान हुआ। वह गोल चक्करों में ही घूमता था। खेत में उसे छोड़ देते तो वह गोल चक्कर लगाता था। जीवन भर की उसकी यह आदत थी। आज कोई बीच में खूंटी भी नहीं थी। आज किसी कोल्हू में भी वह नहीं जुता था। लेकिन जीवन भर गोल चक्करों में जो घूमा है, वह फिर भी गोल चक्करों में घूमने की आदत के कारण, गोल-गोल ही घूमता था। गांव के लोगों ने उस बैल को समझाने की बहुत कोशिश की कि इस तरह मत घूमो। लेकिन बैल कहीं किसी की सुनते हैं? बैल तो दूर, आदमी ही नहीं सुनते, तो बैल कैसे सुनेंगे? उस गांव के लोग जैसे नासमझ थे, उस बैल को समझाते थे कि सीधे चलो, गोल-गोल घूमने की कोई भी जरूरत नहीं है, क्योंकि जो गोल-गोल घूमता है, वह कहीं भी नहीं पहुंचता है। जिसे पहुंचना हो, उसे सीधे जाना होता है, गोल नहीं घूमना होता है। मुझे हंसी आई थी उन गांव के लोगों पर। मैं भी उस गांव में लोगों को समझाने गया था। गांव के एक बूढ़े आदमी ने कहा कि तुम हम पर हंसते हो कि हम बैलों को समझाते हैं। हम तुम पर हंसते हैं कि तुम आदमियों को समझाते हो। न बैल सुनते हैं, न आदमी सुनता है। और बैल तो सुन भी सकते हैं कभी, क्योंकि बैल सीधे और सरल होते हैं, पर आदमी तो बहुत तिरछा है, वह नहीं सुन सकता है।

लेकिन फिर भी चाहे यह गलती ही सही, नासमझी ही सही, आदमी को समझाना ही पड़ेगा। वह सुने या न सुने, उसे कहना ही पड़ेगा। क्या कहना है उसे?

अंतिम खूंटी के बाबत आज मैं आपसे कहना चाहता हूं। क्या कहना चाहता हूं? वह कौन सी खूंटी है जिसके आस-पास आदमी कोल्हू का एक बैल बन जाता है, एक अमृतमयी आत्मा नहीं? एक बंधा हुआ पशु बन जाता है? शायद आपको पता न हो कि पशु शब्द का अर्थ क्या होता है? पशु शब्द का अर्थ होता है: जो पाश में बंधा हो। बंधे हुए होने को ही पशुता कहते हैं। जो बंधा है और गोल-गोल घूमता है, वही पशु है। पशु का अर्थ है: जो पाश में बंधा है, किसी जंजीर से ठुका है, किसी कील से बंधा है। जो बंधा है वही पशु है। हम सारे लोग ही बंधे हैं। हमारे भीतर मनुष्य का भी जन्म नहीं हो पाता, परमात्मा तो बहुत दूर की मंजिल है! आदमी भी होना बहुत कठिन है।

डायोजनीज का नाम सुना होगा। जरूर सुना होगा। और यह भी हो सकता है कि डायोजनीज कहीं न कहीं आपको मिल गया हो। सुनते हैं, दो हजार साल पहले वह पैदा हुआ था, और दिन की भरी रोशनी में जलती हुई लालटेन लेकर गांवों में घूमा करता था। और हर आदमी के चेहरे के पास लालटेन ले जाकर देखता था।

लोग चैंक जाते थे कि बात क्या है? क्या देखना चाहते हैं? और दिन की रोशनी में जब कि सूरज आकाश में है, लालटेन किसलिए लिए हुए हैं? दिमाग खराब हो गया है?

डायोजनीज कहता: दिमाग मेरा खराब नहीं हुआ है। मैं आदमी की तलाश में हूं। मैं हर आदमी के चेहरे को रोशनी में देखने की कोशिश करता हूं। आदमी है या नहीं है? क्योंकि चेहरे बहुत धोखा देते हैं। चेहरों से ऐसा मालूम पड़ता है कि सब आदमी हैं और भीतर आदमियत का कोई निवास नहीं होता है।

आदमी ही होना कठिन है, परमात्मा तो दूर की मंजिल है। लेकिन मैं यह भी आपसे कहूं, जो आदमी हो जाता है, उसके लिए परमात्मा की मंजिल भी बहुत निकट आ जाती है। कौन सी चीज है जो हमें बांधे हैं, जिसके कारण हम पशु हो जाते हैं?

एक छोटी सी कहानी कहूं, उससे शायद इशारा ख्याल में आ सके कि कौन सी चीज हमें बांधे हुए है। कौन सी चीज के इर्द-गिर्द हम जीवन भर घूमते हैं और नष्ट होते हैं? कौन सी चीज है जिसके पीछे हम पागल की तरह चक्कर लगाते हैं और व्यर्थ हो जाते हैं?

एक जंगल के पास एक छोटा सा गांव था। और एक दिन सुबह एक सम्राट शिकार खेलते से भटक गया और उस गांव में आया। रात भर का थका-मांदा था और उसे भूख लगी थी। वह गांव के पहले ही झोपड़े पर रुका और उसने गांव के

उस झोपड़े के बूढ़े आदमी से कहा: क्या मुझे दो अंडे उपलब्ध हो सकते हैं? थोड़ी चाय मिल सकती है? उस बूढ़े आदमी ने कहा: जरूर। स्वागत है आपका। आएं। वह सम्राट बैठ गया उस झोपड़े में। उसे चाय और दो अंडे दिए गए। नाश्ता कर लेने के बाद उसने पूछा कि इन अंडों के दाम कितने हुए? उस बूढ़े आदमी ने कहा: ज्यादा नहीं, केवल सौ रुपये।

सम्राट तो हैरान हो गया। उसने बहुत महंगी चीजें खरीदी थीं, लेकिन कभी सोचा भी नहीं था कि दो अंडों के दाम भी सौ रुपये हो सकते हैं! उस सम्राट ने उस बूढ़े आदमी से पूछा: आर एग्ज सो रेयर हियर? क्या इतना कठिन है अंडों का मिलना यहां? वह बूढ़ा आदमी बोला कि नहीं, एग्ज आर नॉट रेयर सर, बट किंग्ज आर। अंडे तो बहुत मुश्किल नहीं हैं, बहुत होते हैं, लेकिन राजा मिलना बहुत मुश्किल है। कभी-कभी राजा मिलते हैं। उस सम्राट ने सौ रुपये निकाल कर उस बूढ़े को दे दिए और अपने घोड़े पर सवार होकर चला गया।

उस बूढ़े की औरत ने कहा: हैरान हूं मैं, कैसा जादू किया तुमने, कि दो अंडों के सौ रुपये वसूल कर लिए? क्या तरकीब थी तुम्हारी? उस बूढ़े ने कहा, मैं आदमी की कमजोरी जानता हूं। जिसके आस-पास आदमी जीवन भर घूमता है, वह खूंटी मुझे पता है। और उस खूंटी को छू दो और आदमी एकदम घूमना शुरू हो जाता है। मैंने वह खूंटी छू दी और राजा एकदम घूमने लगा। उसकी औरत ने कहा: मैं समझी नहीं! कौन सी खूंटी? कैसा घूमना?

उस बूढ़े ने कहा: तुझे मैं एक और घटना बताता हूं अपनी जिंदगी की। शायद उससे तुझे समझ में आ जाए।

जब मैं जवान था, तब मैं एक राजधानी में गया। मैंने वहां एक सस्ती सी पगड़ी खरीदी, जिसके दाम तीन-चार रुपये थे। लेकिन पगड़ी बड़ी रंगीन, बड़ी चमकदार थी। जैसी कि सस्ती चीजें हमेशा रंगीन और चमकदार होती हैं। जहां बहुत रंगीनी हो और बहुत चमक, समझ लेना, भीतर सस्ती चीज होनी ही चाहिए। सस्ती थी पगड़ी, लेकिन बहुत चमकदार थी, बहुत रंगीन थी। मैं उस पगड़ी को पहन कर सम्राट के दरबार में पहुंच गया। सम्राट की आंख एकदम से उस पगड़ी पर पड़ी। क्योंकि दुनिया में ऐसे लोग बहुत कम हैं जो कपड़ों के अलावा कुछ और देखते हों। आदमी को कौन देखता है? आत्मा को कौन देखता है? पगड़ियां भर दिखाई पड़ती हैं। उस सम्राट की नजर में एकदम पगड़ी आ गई और उसने कहा: कितने में खरीदी है? बड़ी सुंदर है, बड़ी रंगीन है। मैंने उस सम्राट को कहा: पूछते हैं कितने में खरीदी है? पांच हजार रुपये खर्च किए हैं इस पगड़ी के लिए।

सम्राट तो एकदम हैरान हो गया। लेकिन इसके पहले कि सम्राट कुछ कहता, वजीर उसके सिंहासन के पास झुका और सम्राट के कान में उसने कुछ कहा। उसने सम्राट के कान में कहा: सावधान! आदमी धोखेबाज मालूम होता है। दो, चार-पांच रुपये की पगड़ी के पांच हजार दाम बता रहा है। बेईमान है! लूटने के इरादे में है!

उस बूढ़े ने अपनी पत्नी से कहा: मैं फौरन समझ गया कि वजीर क्या कह रहा है। क्योंकि जो लोग किसी को लूटते रहते हैं वे दूसरे लूटने वाले से बड़े सचेत हो जाते हैं। लेकिन मैं भी हारने को राजी नहीं था। मैं वापस लौटने लगा और मैंने उस सम्राट से कहा: तो मैं जाऊं, क्योंकि मैंने जिस आदमी से यह पगड़ी खरीदी है, उसने मुझे यह वचन दिया है कि इस पृथ्वी पर एक ऐसा सम्राट भी है जो इस पगड़ी के पचास हजार भी दे सकता है। मैं उसी सम्राट की खोज में निकला हुआ हूं। तो मैं जाऊं? आप वह सम्राट नहीं हैं। यह राजधानी वह राजधानी नहीं है। यह दरबार वह दरबार नहीं है, जहां यह पगड़ी बिक सकेगी? लेकिन कहीं बिकेगी, मैं जाता हूं।

सम्राट ने कहा: पगड़ी रख दो। पचास हजार रुपये ले लो।

वजीर बहुत हैरान हो गया। जब मैं पचास हजार रुपये लेकर लौटने लगा, दरवाजे पर वजीर मुझे मिला और कहा, हद्द कर दी! हम भी बहुत कुशल हैं लूटने में, लेकिन यह तो जादू हो गया! मामला क्या है? तो मैंने उस वजीर के कान में कहा था कि तुम्हें पता होगा कि पगड़ियों के दाम कितने होते हैं। मुझे आदमियों की कमजोरियों का पता है, मुझे उस खूंटी का पता है जिसको छू दो और आदमी एकदम घूमने लगता है।

पता नहीं, वह बूढ़ी समझ पाई अपने पति की यह बात या नहीं। लेकिन आप समझ गए हैं। आपके हंसने से मुझे अंदाजा लगता है, आप पहचान गए हैं, आदमी किस खूंटी से बंधा है।

अहंकार के अतिरिक्त आदमी के जीवन में और कोई खूंटी नहीं है। और जो अहंकार से बंधा है वह और हजार तरहों से बंध जाएगा। और जो अहंकार से मुक्त हो जाता है, वह और सब भांति भी मुक्त हो जाता है।

एक ही स्वतंत्रता है जीवन में, एक ही मुक्ति है, एक ही मोक्ष है और एक ही द्वार है प्रभु का: और वह है अहंकार की खूंटी से मुक्त हो जाना। एक ही धर्म है, एक ही प्रार्थना है, एक ही पूजा है: और वह है अहंकार से मुक्त हो जाना। एक ही मंदिर है, एक ही मस्जिद है, एक ही शिवालय है। जिस हृदय में अहंकार नहीं..वही मंदिर है, वही मस्जिद है, वही शिवालय है। आज इस अंतिम दिन इस तीसरे भ्रम के संबंध में थोड़ी बात मुझे आपसे कहनी है।

जीवन को देखने की दो ही दृष्टियां हैं और जीवन को जीने के दो ही ढंग हैं। या तो अहंकार के इर्द-गिर्द जीयो या निर-अहंकार के। या तो ईगो के आस-पास घूमो या ईगोलेसनेस के। ईगोलेसनेस के, निर-अहंकार आकाश में उड़ जाओ। जो अहंकार से बंधे हैं, वे पृथ्वी से बंधे रह जाते हैं। और जो निर-अहंकार में उठते हैं, आकाश उनका हो जाता है। आकाश की स्वतंत्रता उनकी हो जाती है, जीवन के विराट तक पहुंचने का मार्ग खुल जाता है। क्यों? क्योंकि जो क्षुद्र से मुक्त होता है, वह विराट से संयुक्त हो जाता है। यह तो गणित की तरह सीधा सा नियम है। यह तो एक युनिवर्सल, एक सार्वभौम नियम है। जो क्षुद्र से बंधा है, वह विराट से वंचित रह जाएगा। और जो क्षुद्र से मुक्त हो जाता है, वह विराट में प्रविष्ट हो जाता है।

एक बूंद थी पानी की। वह समुद्र होना चाहती थी। वह बूंद मुझसे पूछने लगी, मैं समुद्र कैसे हो जाऊं? मैंने उस बूंद से कहा, बड़ी छोटी, और एक ही तरकीब है। तो बूंद अगर बूंद होने को राजी है, अगर बूंद बूंद ही बनी रहने को उत्सुक है, तो समुद्र से मिलने का कोई भी रास्ता नहीं। लेकिन अगर तू बूंद की भांति मिटने को राजी हो जाए, तो मिटते ही सागर हो जाएगी। उस बूंद ने मेरी बात मान ली। वह सागर में कूद गई। उसने खो दिया अपने को। उसने अपने अहंकार को धो डाला। वह सागर से एक हो गई। लेकिन उसने कुछ खोया नहीं। बूंद ने खोई बूंद और हो गई सागर। इसे कोई खोना कहेगा? इसे कोई मिटना कहेगा? अगर यही मिटना है, तो फिर पाना और क्या हो सकता है?

हम अहंकार की बूंदें बने हुए हैं और परमात्मा के सागर को खोजने निकल पड़े हैं। हम अहंकार के छोटे-छोटे क्षुद्र बिंदु बने हुए हैं, और विराट के, असीम के साथ एक होने की कामना ने हमें पीड़ित कर रखा है। हम बूंद के किनारे से बंधे हैं और सागर की यात्रा, अज्ञात सागर की यात्रा के आमंत्रण को हमने स्वीकार कर लिया है। इन्हीं दोनों के बीच खिंच-खिंच कर आदमी नष्ट हो जाता है। वह अहंकार को भी बचा लेना चाहता है, और प्रभु को भी पा लेना चाहता है।

कबीर कहते थे, उसकी गली बहुत संकरी है। वहां दो नहीं समा सकेंगे..या तो वही हो सकता है या फिर हम हो सकते हैं। हमारा सारा जीवन अहंकार को परिपुष्ट करने में व्यतीत होता है, विसर्जित करने में नहीं। हम उसे मजबूत करते हैं, जो हमारी पीड़ा है। हम उसी घाव को गहरा करते हैं जो हमारा दुख है। हम उसी बीमारी को पानी सींचते हैं जो हमारे प्राण लिए लेती है। अहंकार को सींचने के सिवाय हम जीवन भर और क्या करते हैं? किसलिए उठते हैं मकान आकाश को छूने वाले? आदमी के रहने के लिए? झूठी है यह बात। अहंकार का निवास बनने के लिए। आदमी के रहने के लिए छोटे झोपड़े भी काफी हैं, लेकिन अहंकार के लिए बड़े से बड़े मकान भी छोटे हैं। अहंकार उठाता है बड़े मकानों को कि आकाश छू लें।

किसलिए विजय-यात्राएं चलती हैं? किसलिए सिकंदर, नेपोलियन और चंगीज पैदा होते हैं? जीने से..चंगीज का, सिकंदर का, नेपोलियन का..जीवन से क्या वास्ता है? लेकिन नहीं, अहंकार की यात्राएं बड़ी दूर ले जाती हैं आदमी को।

सिकंदर जिस दिन मरने को था, बहुत उदास था। किसी ने पूछा: तुम इतने उदास क्यों हो? सिकंदर ने कहा, मैं इसलिए उदास हूं कि सारी दुनिया तो मैंने करीब-करीब जीत ली। अब मैं बड़ी कठिनाई में पड़ गया हूं। दूसरी कोई दुनिया ही नहीं है, जिसको मैं आगे जीतूं। और मेरे भीतर बड़ा खाली-खालीपन मालूम होता है। क्योंकि जब तक मैं जीतता ही न रहूं, तब तक मुझे कोई चैन नहीं। और दुनिया समाप्त होने के करीब आ गई है। दूसरी कोई दुनिया नहीं है। मैं क्या जीतूं?

अहंकार दुनिया को जीत ले, तो फिर दूसरी दुनिया को जीतने की आकांक्षा शुरू हो जाती है। किसलिए धन इकट्ठा होता है? इसलिए कि जीवन में कोई आनंद मिल सके?

अमरीका का एक बहुत बड़ा करोड़पति मरण-शय्या पर पड़ा था..कारनेगी। एक मित्र ने उससे पूछा: कितनी संपत्ति तुमने जीवन में इकट्ठी की है? उसने कहा: ज्यादा नहीं; केवल दस अरब। मित्र ने कहा: दस अरब! कहते हो, ज्यादा नहीं? कारनेगी ने कहा: मेरे इरादे तो सौ अरब इकट्ठा करने के थे, लेकिन बुढ़ापा निकट आ गया, योजना अधूरी रही जाती है।

क्या आप सोचते हैं कि कारनेगी सौ अरब इकट्ठा कर लेता तो कोई फर्क पड़ जाता? जरा भी फर्क पड़ने वाला नहीं था। आदमी को हम भलीभांति जानते हैं, फर्क जरा भी नहीं पड़ सकता था। कारनेगी के पास सौ अरब इकट्ठे हो जाते, तो कारनेगी के इरादे हजार अरब पर पहुंच जाते।

आदमी का इरादा उसके आगे चलता है। आदमी की वासना उसके आगे चलती है। आदमी हमेशा पीछे रह जाता है। मंजिल, जिसको वह छूना चाहता है और आगे हट जाती है। अहंकार दौड़ाता है, दौड़ाता है, कहीं भी पहुंचाता नहीं है।

एक छोटी सी बच्चों की कथा है।

अलाइस नाम की लड़की स्वर्ग में पहुंच गई, परियों के देश में। पृथ्वी से स्वर्ग तक पहुंचते-पहुंचते बहुत थक गई थी। भूख लग आई थी। स्वर्ग पर पहुंचते ही, परियों के देश में पहुंचते ही उसे दिखाई पड़ा कि दूर एक आम की घनी छाया के नीचे परियों की रानी खड़ी है और उसके पास फलों के और मिठाइयों के थाल सजे हैं। और वह रानी उस भूखी अलाइस को बुला रही है कि आ जाओ। पास ही है वह। वह दिखाई पड़ रही है। उसकी आवाज सुनाई पड़ती है कि अलाइस आ जा। अलाइस दौड़ना शुरू करती है। सुबह है, सूरज निकल रहा है..जब दौड़ शुरू होती है। फिर दोपहर हो जाती है, सूरज ऊपर आ गया है और अलाइस दौड़ी चली जा रही है। वह थक गई है। उसने खड़ी होकर चिल्ला कर पूछा कि कैसी दुनिया है तुम्हारी? सुबह से मैं दौड़ रही हूं, लेकिन मेरे और तुम्हारे बीच का फासला, डिस्टेंस पूरा नहीं होता? तुम उतनी ही दूर मालूम पड़ती हो रानी?

रानी ने चिल्ला कर कहा: घबड़ा मत। दौड़ती आ। जो दौड़ते हैं वे पहुंच जाते हैं। खड़ी होकर समय मत खो। थोड़ी देर में सूरज ढल जाएगा और सांझ आ जाएगी। दौड़, जल्दी आ।

अलाइस और तेजी से दौड़ने लगी। सूरज जैसे-जैसे नीचे उतरने लगा, अलाइस और तेज दौड़ रही है। और तेज दौड़ रही है। लेकिन न मालूम कैसी पागल दुनिया है वह..रानी उतनी ही दूर..रानी और उसके बीच का फासला कम नहीं होता है। फिर वह थक कर, चकनाचूर होकर गिर पड़ती है। और चिल्लाती है कि मामला क्या है? ये कैसे रास्ते हैं परियों के देश के कि मैं सुबह से दौड़ रही हूं, सूरज डूबने के करीब आ गया है, मैं अब तक तुम्हारे पास नहीं पहुंच पाई? तुम उतनी ही दूर खड़ी हो, जितना सुबह थी।

वह रानी खूब हंसने लगी। उसने कहा: पागल अलाइस। परियों के देश में ही रास्ते ऐसे नहीं हैं, आदमियों के देश में भी रास्ते ऐसे ही हैं। लोग दौड़ते हैं लेकिन पहुंचते कभी भी नहीं। फासला उतना ही बना रहता है।

जन्म के साथ आदमी जहां होता है, मरने के साथ वहीं पाता है। कोई फासला पूरा नहीं होता। कोई यात्रा पूरी नहीं होती। क्यों नहीं होती है यात्रा पूरी? जिस अहंकार को हम भरने चले हैं, वह एकदम झूठी इकाई है, फाल्स एनटायटी है। वह होती तो भर भी जाती। वह होती तो हम जीत भी लेते। वह होती तो हम उसे पूरा भी कर लेते। वह होती तो हम उसे फुलफिलमेंट, उसकी पूर्ति का कोई न कोई रास्ता खोज लेते। लेकिन अहंकार है झूठी इकाई। आदमी के भीतर अहंकार से ज्यादा बड़ा कोई असत्य नहीं है। वह है नहीं। मैं जैसी कोई भी चीज शब्दों के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं। और जिस दिन थोड़ा शब्दों को छोड़ कर भीतर झांकेंगे, तो वहां किसी 'मैं' को नहीं पाएंगे। कभी किसी ने नहीं पाया है।

मैं एक शब्द मात्र है, एक संज्ञा मात्र है, एक कामचलाऊ शब्द। हमारे सभी शब्द कामचलाऊ हैं। एक आदमी का नाम हम राम रख लेते हैं, एक का कृष्ण रख लेते हैं। नाम झूठे हैं। दूसरे लोगों को पुकारने के लिए राम रख लेते हैं नाम,

ताकि दूसरे लोग पुकारें तो पता चल सके कि किसको पुकार रहे हैं। दूसरे को पुकारने के लिए होता है नाम। और खुद को पुकारने के लिए होती है मैं की इकाई। अन्यथा हम क्या पुकारें अपने आपको? तो कहते हैं: मैं। यह शब्द काम दे देता है जीवन में। लेकिन यह शब्द बड़ा झूठा है। इसके पीछे कोई भी सब्स्टेंस नहीं, यह बिल्कुल शैडो है। इसके पीछे कोई भी वस्तु नहीं, कोई पदार्थ नहीं। यह बिल्कुल झूठी छाया है। और इस छाया को ही भरने में, दौड़ने में हम लगे रहते हैं। छाया को ही पकड़ने में लगे रहते हैं।

एक संन्यासी एक घर के सामने से निकलता था। एक छोटा सा बच्चा घुटने टेक कर चलता था। सुबह थी और धूप निकली थी और उस बच्चे की छाया आगे पड़ रही थी। वह बच्चा अपने सिर को पकड़ने के लिए हाथ ले जाता, लेकिन जब तक उसका हाथ पहुंचता सिर आगे बढ़ जाता। बच्चा थक गया और रोने लगा और चिल्लाने लगा। और उसकी मां उसे बहुत समझाने लगी कि पागल, यह छाया है। छाया पकड़ी नहीं जा सकती। लेकिन बच्चे समझ सकते हैं कि क्या छाया है और क्या सत्य है? जो समझ लेता है कि क्या छाया है और क्या सत्य, क्या सब्स्टेंस है और क्या शैडो..वह बच्चा नहीं रह जाता, वह प्रौढ़ हो जाता है। उसे मैच्योरिटी उपलब्ध हो जाती है। बच्चे कभी नहीं समझते कि छाया क्या है, सपना क्या है, झूठ क्या है। वह बच्चा रोने लगा, वह कहने लगा कि मुझे तो पकड़ना है इस छाया के सिर को।

वह संन्यासी भीख मांगने आया था। उसने उसकी मां से कहा: मैं पकड़ा देता हूं इसे। वह बच्चे के पास गया। उस रोते हुए बच्चे की आंखों से आंसू टपकते हैं। सभी बच्चों की आंखों से आंसू टपकते हैं। जिंदगी भर दौड़ते हैं और पकड़ नहीं पाते उसे जिसे पकड़ने की योजना बनाई है।

बूढ़े भी रोते हैं और बच्चे भी रोते हैं। वह बच्चा भी रो रहा था, तो कोई नासमझी तो नहीं कर रहा था। उस संन्यासी ने उसके पास जाकर कहा, बेटे रो मत। क्या करना है, तुझे छाया पकड़नी है?

उस बच्चे ने कहा: मुझे छाया पकड़नी है। मैं सुबह से परेशान हो गया, थक गया। उस संन्यासी ने कहा: जीवन भर की कोशिश कर तो थक जाएगा, परेशान हो जाएगा, छाया को पकड़ने का यह रास्ता नहीं है। उस बच्चे ने पूछा, फिर रास्ता क्या है? संन्यासी ने उस बच्चे का हाथ पकड़ा और बच्चे के सिर पर रख दिया। इधर हाथ सिर पर गया वहां छाया के ऊपर भी सिर पर भी हाथ चला गया। संन्यासी ने कहा: देख, पकड़ ली तूने छाया। छाया को सीधा पकड़ेगा तो नहीं पकड़ सकेगा कभी भी। लेकिन अपने को पकड़ लेगा, तो छाया तो पकड़ में आ ही जाती है।

जो अहंकार को पकड़ने के लिए दौड़ते हैं, वे अहंकार को कभी नहीं पकड़ पाते। अहंकार मात्र छाया है। लेकिन जो आत्मा को पकड़ लेते हैं, अहंकार तो पकड़ में आ ही जाता है, वह तो छाया है, उसका कोई मूल्य नहीं। केवल वे ही लोग तृप्ति को, केवल वे ही लोग कंटेंटमेंट को, केवल वे ही लोग फुलफिलमेंट को, आप्तकामता को उपलब्ध होते हैं, जो आत्मा को उपलब्ध होते हैं। आत्मा और अहंकार के बीच चुनाव है। आत्मा और अहंकार के बीच सारा विकल्प है। आत्मा और अहंकार के बीच जीवन की सारी व्यथा, सारी पीड़ा है। जो अहंकार की तरफ जाते हैं वे भटक जाते हैं। उन्होंने गलत खूंटी के आस-पास जीवन को चकरीला बना लेंगे। लेकिन जो अहंकार से पीछे हटते हैं और उसकी तरफ जाते हैं। जो सब्स्टेंस है, जो मूल है, जो भीतर है, जो मैं हूं वस्तुतः, जो मेरा ऑथेंटिक बीइंग है, जो उसकी तरफ जाते हैं, वे उपलब्ध हो जाते हैं। और उनके लिए छायाएं जीतने को नहीं रह जातीं।

दुनिया में दो ही तरह की यात्राएं हैं..अहंकार को भरने की यात्रा और आत्मा को उपलब्ध करने की यात्रा। लेकिन अहंकार से जो बंधा रह जाता है वह आत्मा से वंचित रह जाता है।

यह अहंकार क्या हम छोड़ने की कोशिश करें? नहीं, अगर छोड़ने की कोशिश की, तो अहंकार से कभी मुक्त न हो सकेंगे आप। छाया न तो पकड़ी जा सकती है और न छोड़ी जा सकती है। जो चीज छोड़ी जा सकती है, वह पकड़ी भी जा सकती थी। छाया न छोड़ी जा सकती है, न पकड़ी जा सकती है। अहंकार न पकड़ा जा सकता है, न छोड़ा जा सकता है। इसलिए पकड़ने वाले तो भूल में पड़ते ही हैं, छोड़ने वाले और भी बड़ी भूल में पड़ जाते हैं।

मैं एक संन्यासी के पास कुछ दिन रुका था। वे मुझसे कहते थे, मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी। मैंने उनसे पूछा: यह लात कब मारी थी आपने? वे कहने लगे, कोई तीस वर्ष हो गए। फिर मैंने उन्हें कहा: आप नाराज न हों तो मैं एक बात कहूं, और नाराज होने का इसलिए कह देता हूं, क्योंकि संन्यासियों की नाराज होने की बड़ी पुरानी आदत है, बड़ी पुरानी परंपरा है। अभिशाप दे सकते हैं। जन्म-जन्म बिगाड़ सकते हैं। सो अगर नाराज न हों, तो एक बात पूछूं? मेरा इतना कहते, नाराज तो वे हो ही गए। लेकिन फिर भी उन्होंने कहा: हां, कहिए, क्या कहते हैं?

मैंने कहा: तीस वर्ष पहले यह लात मारी थी आपने, तो लात ठीक से लग नहीं पाई। नहीं तो तीस वर्ष तक उसकी स्मृति, उसकी याद की कोई भी जरूरत नहीं? तीस वर्ष पहले आपका अहंकार कहता होगा: लाखों रुपये हैं मेरे पास, मैं कुछ हूं, समबडी हूं। फिर आपने लात मार दी। आपने सोचा कि लाखों रुपये छोड़ दिए, तो अहंकार चला जाएगा। नहीं, जिस दिन से आपने लाखों छोड़े उस दिन से आपके अहंकार ने नई वाणी बोलनी शुरू कर दी। वे कहने लगे, मैंने लाखों रुपये छोड़ दिए। मैंने लाखों रुपये छोड़ दिए हैं!

लाखों रुपये थे, तो भी सड़क पर अकड़ कर चलते थे। लाखों रुपये छोड़ दिए, तो और भी ज्यादा अकड़ कर चलने लगे। रुपयों की अकड़ तो दिखाई पड़ जाती है, बड़ी स्थूल है। लेकिन त्याग की अकड़ दिखाई भी नहीं पड़ती, बड़ी सूक्ष्म है। धन छोड़ देने से अहंकार नहीं छूटता, पद छोड़ देने से अहंकार नहीं छूटता, घर छोड़ देने से अहंकार नहीं छूटता। अहंकार है ही नहीं कि छोड़ा जा सके। तो जो भी आप छोड़ेंगे, अहंकार उसी छोड़ने को अपना उपकरण बना लेगा और कहेगा, मैंने छोड़ा! मैं हूं छोड़ने वाला! अहंकार के रास्ते बड़े सूक्ष्म हैं। छाया बड़ी सूक्ष्म है। पकड़ में नहीं आती, छोड़ने में नहीं आती। सो जो लोग सोचते हैं कि अहंकार छोड़ देंगे हम, वे और भी बड़ी भूल में गिर जाते हैं। आज तक किसी ने अहंकार कभी छोड़ा नहीं है। फिर अहंकार भरा भी नहीं जा सकता और छोड़ा भी नहीं जा सकता।

तो हम क्या करें?

अहंकार जाना जा सकता है। अहंकार पहचाना जा सकता है। अहंकार की रिकग्निशन हो सकती है। अहंकार की प्रतिभिज्ञा हो सकती है। अहंकार का बोध हो सकता है। अहंकार के प्रति मैं जागरूक हो सकता हूं। और जो आदमी अहंकार के प्रति जागरूक हो जाता है उसका अहंकार विसर्जित हो जाता है। मनुष्य की निद्रा में अहंकार है, मनुष्य के जागरण में नहीं। जैसे ही कोई जाग कर देखने की कोशिश करता है कहां है अहंकार, वैसे ही अहंकार हटने लगता है।

जैसे एक गांव में एक घर था। और उस घर में बड़ा अंधेरा था। और कई हजार साल का अंधेरा था। और उस गांव के लोग उस घर में नहीं जाते थे। मैं उस गांव में गया और मैंने कहा: इस घर को ऐसा ही क्यों छोड़ रखा है? उन्होंने कहा: इस घर में हजारों साल का अंधेरा है। मैंने कहा: अंधेरे की कोई ताकत होती है? दीया जलाओ और भीतर पहुंच जाओ। उन्होंने कहा: दीया जलाने से क्या होगा? एकाध रात का अंधेरा नहीं है, हजारों साल का अंधेरा है। हजारों साल तक दीये जलाओ, तब कहीं खतम हो सकता है।

गणित बिल्कुल ठीक था, बिल्कुल लॉजिकल थी बात, तर्कयुक्त थी। मैं भी डरा। बात तो ठीक ही थी। हजारों साल से घिरा अंधकार! कहीं एक दिन के दीये जलाने से दूर हो सकता है? फिर भी मैंने कहा: एक कोशिश तो करके देख ही लें। क्योंकि जिंदगी में कई बार गणित काम नहीं पड़ता और तर्क व्यर्थ हो जाता है। जिंदगी बड़ी अनूठी है। वह तर्कों के पार चली जाती है और गणित से दूर निकल जाती है। गणित में हमेशा दो और दो चार होते हैं। जिंदगी में कभी पांच भी हो जाते हैं दो और दो और कभी तीन भी रह जाते हैं। जिंदगी गणित नहीं है। तो चलें, देख लें। वे लोग राजी नहीं हुए। उन्होंने कहा: जाने से फायदा क्या है? हम ही नहीं कह रहे हैं यह बात, हमारे बापदादे भी यही कहते थे..इस मकान में दीया मत जलाना। हजारों साल का अंधेरा है। उनके बापदादों ने भी यही कहा था। और आप क्या बड़े परंपरा के विरोधी मालूम होते हैं? आप शास्त्रों को नहीं मानते? बुजुर्गों को नहीं मानते? सब नासमझ थे? हमारे गांव में तो लिखा हुआ रखा है कि उस घर में दीया

मत जलाना। वहां हजारों साल पुराना अंधेरा है, वह मिट नहीं सकता। फिर भी मैंने उन्हें बामुश्किल राजी किया कि चलो देख तो लें। बहुत से बहुत तो यही होगा कि हम असफल होंगे। बामुश्किल वे जाने को राजी हुए। दीया जलाते ही, वहां तो कोई भी अंधेरा नहीं था। वे बहुत हैरान थे। उन्होंने कहा: यह अंधेरा कहां गया?

मैंने कहा: दीया लो हाथ में और खोजो कि कहां है अंधेरा? और अगर किसी दिन मिल जाए, तो मुझे खबर कर देना। मैं फिर तुम्हारे गांव में आ जाऊंगा। अभी तक उनकी कोई खबर नहीं आई। खोज रहे होंगे वे लोग दीये लेकर अंधेरे को। और कहीं दीये के सामने अंधेरा आता है? कहीं दीये को अंधेरा मिलता है?

अहंकार एक अंधकार छाया है। जो अपने भीतर दीये को लेकर जाता है, वह उसे नहीं पाता है। तो न तो उसे छोड़ना है, न उसे भरना है। एक दीया जलाना है भीतर और उसे देखना है। उस दीये की रोशनी में कि वह कहां है। अपने भीतर जाग कर देखना है कि कहां है अहंकार! नहीं पाया जाता है। और जहां अहंकार नहीं पाया जाता है, वहां जो मिल जाता है, उसी को कोई परमात्मा कहता है, कोई आत्मा कहता है, कोई सत्य कहता है। उसी को कोई सौंदर्य कहता है, उसी को कोई और नाम देता है।

नामों के भेद हैं वे फिर। अहंकार जहां नहीं है, वहां वह मिल जाता है जो सबका प्राणों का प्राण है, जो प्यारों से प्यारा है। वह जो बिलॅविड है, वह जो प्रीतम है, वह उपलब्ध हो जाता है। लेकिन हम इससे बंधे हैं और इसी के साथ जीते और मरते हैं, इसलिए उसकी तरफ आंख नहीं जा पाती। इसे देखना जरूरी है, इसे छोड़ना जरूरी नहीं है। इससे भागना जरूरी नहीं है, इसे पहचानना जरूरी है।

अहंकार को देखने की प्रक्रिया का नाम है ध्यान, अहंकार को देखने की प्रक्रिया का नाम है मेडिटेशन। कैसे हम देखें इसे जो हमें घेरे हुए है और पकड़े हुए है? क्या है रास्ता? कोई घड़ी आधी घड़ी किसी मंदिर में बैठ जाने से यह नहीं देखा जा सकता। मंदिर में बैठने वालों का तो यह और भी मजबूत हो जाता है, क्योंकि उन्हें ख्याल होता है हम धार्मिक हैं। बाकी सारा जगत अधार्मिक है। क्योंकि हम मंदिर आते हैं और हमारा स्वर्ग निश्चित है और बाकी सब नरक में सड़ेंगे।

क्या आपको पता है? ईसाई मजहब यह मानता रहा है कि जो लोग संत पुरुष हैं, जो धार्मिक पुरुष हैं, वे लोग स्वर्ग के आनंद उठाएंगे। जो पापी हैं वे नरक में कष्ट भोगेंगे। और स्वर्ग में जो धार्मिक लोग जाएंगे, उन्हें एक विशेष प्रकार के सुख की भी सुविधा रहेगी और वह यह कि नरक में जो पापी कष्ट भोग रहे हैं, उनको देखने का मजा भी वे ले सकेंगे। वहां से वे देख सकेंगे कि कितने पापी नरक में सड़ रहे हैं और कष्ट झेल रहे हैं। जिन लोगों ने यह ख्याल किया होगा, पुण्यात्माओं ने, धार्मिक लोगों ने, कि पापियों को कष्ट में और नरक के कड़ाहों में जलते हुए देखने का मजा भी हम लेंगे, वे कैसे लोग रहे होंगे इसे आप भलीभांति सोच सकते हैं। और यह कोई ईसाइयत का सवाल नहीं है। दुनिया के सारे धर्म और दुनिया के सारे तथाकथित धार्मिक लोग, ये सो-काल्ड रिलिजियस जो हैं, इन सारे लोगों ने अपने को स्वर्ग में ले जाने की और दूसरों को नरक में डालने की पूरी योजना और व्यवस्था कर रखी है। क्योंकि वे यह कह सकते हैं भगवान को कि मैं रोज तुम्हारे नाम पर माला फेरता था और इस आदमी ने माला नहीं फेरी, इसको डालो कड़ाहे में। मैं रोज मंदिर आता था, एक भी दिन नहीं चूका। सर्दी पड़ती थी, तब भी आता था। धूप पड़ती थी, तब भी आता था। यह आदमी कभी मंदिर में नहीं दिखाई पड़ा। डालो इसको कड़ाहे में। मैं रोज गीता पढ़ता था, कुरान पढ़ता था, बाइबिल पढ़ता था। रोज तुम्हारे भजन-कीर्तन करता था। व्यर्थ गए वे सब? मुझे बैठाओ स्वर्ग में। लेकिन मुझे मजा अकेले इतने से नहीं आएगा कि मैं स्वर्ग मैं बैठ जाऊं। उन सब लोगों को जो मेरे पड़ोस में रहते थे बिना नरक में डाले कोई आनंद उपलब्ध नहीं हो सकता। उन सबको डालो नरक में।

जर्मन कवि था, हेन। हेन ने एक कविता लिखी है। उस कविता में लिखा है कि एक रात भगवान ने मुझसे पूछा कि तू चाहता क्या है जिससे तू खुश हो जाए? तो मैंने कहा: एक बहुत बड़ा मकान चाहता हूं, जैसा गांव में दूसरा न हो। भगवान ने कहा, ठीक, यह हो जाएगा। और क्या चाहता है? एक बहुत शानदार बगीचा चाहता हूं; जैसा पृथ्वी पर न हो। भगवान ने कहा: ठीक, यह भी हो जाएगा। और क्या चाहता है? मैं जो भी सुख जिस क्षण चाहूं उसी वक्त मुझे मिल जाए। भगवान ने

कहा: यह भी हो जाएगा। और क्या चाहता है? हेन ने कहा: अगर आप मानते ही नहीं और मेरे दिल की मुराद पूरी ही करना चाहते हैं, तो एक काम और कर दें। मेरे बगीचे के दरख्त जो हों, मेरे पड़ोसी उन दरख्तों से लटके रहें, तो मुझे पूरा आनंद उपलब्ध हो जाएगा। मेरे पड़ोसी दरख्तों से लटके रहें, तो मुझे पूरा आनंद उपलब्ध हो जाएगा। अगर आप मानते ही नहीं हो, मेरे दिल की आखिरी ख्वाहिश पूरी करना चाहते हो, तो इतना कर दें कि मेरे सारे पड़ोसी दरख्तों से हैंग कर दिए जाएं, गर्दनों से लटके रहें।

नींद खुल गई हेन की और उसने बाद में लिखा कि मैं बहुत घबड़ाया कि मेरे भीतर भी कैसी-कैसी कामनाएं हैं। लेकिन अगर आप धार्मिक आदमियों के मन में खोजेंगे, तो सबके मन में यह कामना है कि पड़ोसी नरक में चले जाएं और हम स्वर्ग में पहंुच जाएं। वे स्वर्ग में जाने के लिए सारा आयोजन करते हैं।

मंदिर में बैठने वाला अहंकार से मुक्त नहीं होता। स्वर्ग में जाने की कामना रखने वाला अहंकारी ही है। मुझे परमात्मा मिल जाए, मैं परमात्मा को भी पजेस कर लूं। वह मेरी संपत्ति बन जाए। यह भी अहंकार की ही दौड़ है।

फिर कैसे?

चैबीस घंटे जागरूक होना पड़ता है और देखना पड़ता है कि जीवन की किन-किन क्रियाओं में अहंकार खड़ा होता है। क्या वस्त्रों के पहनने में खड़ा होता है? आंख के देखने के ढंग में खड़ा होता है? पैर के उठने में खड़ा होता है? बोलने में खड़ा होता है कि चुप रह जाने में खड़ा होता है? कहां-कहां अहंकार खड़ा होता है? किन-किन जगहों से सिर उठाता है? चैबीस घंटे एक अवेयरनेस, एक होश चाहिए कि कहां खड़ा होता है। कहां खड़ा होता है? चैबीस घंटे खोज-बीन चाहिए दीया लेकर कि अहंकार कहां खड़ा होता है, कैसे खड़ा होता है? क्या है उसकी प्रोसेस? उसके खड़े होने की प्रक्रिया क्या है? कैसे निर्मित होता है भीतर? कैसे संघटित होता है? क्या है मार्ग उसके बन जाने का?

और अगर चैबीस घंटे कोई देखता रहे, देखता रहे, खोजता रहे, खोजता रहे..तो बहुत हैरानी, बहुत आश्चर्य, बहुत चमत्कार अनुभव करेगा। जिन-जिन जगहों पर वह खोज लेगा कि यहां-यहां अहंकार खड़ा होता है वहीं-वहीं से अहंकार विदा हो जाएगा। और जिस दिन जीवन के किसी पहलू में और चित्त के किसी हिस्से में अहंकार की खोज पूरी हो जाएगी, कोई अनजान, अपरिचित कोना बाकी नहीं बचेगा मन का और माइंड का, उसी दिन अहंकार के बाहर हो जाते हैं।

एक सम्राट था। एक फकीर ने उस सम्राट से कहा कि तू अगर चाहता है कि परमात्मा को पा ले, तो एक ही रास्ता है। तू मेरे झोपड़े पर आ जा और कुछ दिन मेरे साथ रह जा। उस सम्राट की बड़ी तीव्र प्यास थी और आकांक्षा थी। वह उस फकीर के झोपड़े पर चला गया। उस फकीर ने कहा: कल सुबह से तेरी शिक्षा शुरू होगी और शिक्षा बड़ी अजीब है। शिक्षा यह है कि कल सुबह से तू कुछ भी कर रहा होगा और मैं लकड़ी की तलवार लेकर तेरे पीछे से हमला कर दूंगा। तू खाना खा रहा होगा। तू झोपड़े में बुहारी लगा रहा होगा, तू कपड़े धो रहा होगा, तू स्नान करता होगा और मैं तेरे ऊपर तलवार से हमला कर दूंगा। लकड़ी की तलवार होगी। हमेशा सावधान रहना कि मैं कब हमला करता हूं। क्योंकि मेरा कोई ठिकाना नहीं। मैं कोई खोज-खबर नहीं दूंगा। पहले से रेडियो में कोई खबर नहीं निकालूंगा। अखबार में, स्थानीय कार्यक्रम में खबर नहीं होगी कि आज मैं यह करने वाला हूं। यह कोई खबर नहीं होगी, कोई घोषणा नहीं, कोई सूचना नहीं, किसी भी क्षण हमला कर दूंगा। तैयार रहना!

उस सम्राट ने कहा: लेकिन इससे मतलब क्या है?

वह फकीर बोला: अहंकार इसी भांति चैबीस घंटे न मालूम कहां-कहां से हमले करता है। सो मैं हमला करूंगा। मेरी तलवार का ख्याल रखना!

सात दिन में सम्राट की हड्डी-पसलियां टूट गईं। क्योंकि चैबीसों घंटे वह बूढ़ा फकीर न मालूम कब हमला करने लगा। वह सम्राट किताब पढ़ रहा है और हमला हो जाए! लेकिन सात दिन में उसे यह भी उसके ख्याल में आ गया कि सावधानी जैसी भी कोई चीज है, अलर्टनेस जैसी भी कोई चीज है। पहली दफा जिंदगी में उसे पता चला कि मैं अभी तक

सोया-सोया जीता रहा। अभी तक मैं होश से नहीं जीया। कभी मैंने होश का ख्याल ही नहीं किया। लेकिन सात दिन बार-बार चुनौती मिली। चोट पड़ी। भीतर कोई चीज जागने लगी और ख्याल रखने लगी कि हमला होने को है। हमला होने को है। पंद्रह दिन पूरे होते-होते हमले की खबर उसे मिलने लगी। गुरु के पैर की धीमी सी आहट भी उसे सुनाई पड़ जाती थी। वह अपनी ढाल सम्हाल लेता और हमले से बच जाता। तीन महीने पूरे हो गए। हमला करना मुश्किल हो गया। किसी भी हालत में हमला किया जाए..वह हमेशा सावधान होता और रोक लेता।

उसके गुरु ने कहा: एक पाठ तेरा पूरा हो गया। कल से दूसरा पाठ शुरु होगा। और उसने पूछा कि इन तीन महीनों में तुझे क्या हुआ? उस सम्राट ने कहा: दो बातें हुईं। मैं हैरान हो गया। पहले तो मैं डर गया था कि इस लकड़ी की तलवार से चोट पहुंचाने का और परमात्मा से मिलने का क्या वास्ता? क्या संबंध? यह पागल तो नहीं है फकीर? मैं किसी पागल के चक्कर में तो नहीं पड़ गया? लेकिन इन तीन महीनों में मुझे पता चला कि जितना मैं सावधान रहने लगा, उतना ही मैं निर-अहंकारी हो गया। जितना मैं सावधान रहने लगा, उतना ही निर्विचार हो गया। जितना ही मैं होश से जीने लगा, उतना ही मन के विचारों की धारा क्षीण हो गई। क्योंकि मन एक ही साथ दो काम नहीं कर सकता..या तो विचार कर सकता है या जागरूक हो सकता है। या तो अवेयरनेस हो सकती है, या विचार हो सकते हैं। दोनों चीजें एक साथ नहीं हो सकतीं।

इसको थोड़ा देखना। जब विचार होंगे, सावधानी क्षीण हो जाएगी। जब सावधानी होगी, विचार क्षीण हो जाएंगे।

अगर मैं एक छुरी लेकर अभी आपकी छाती पर आ जाऊं, तो विचार एकदम बंद हो जाएंगे। क्योंकि उस खतरे में चित्त पूरा सावधान हो जाएगा कि पता नहीं क्या हो? इस समय विचार करने की सुविधा नहीं है, इस समय तो होश बनाए रखने की जरुरत है कि पता नहीं क्या हो?

एक क्षण में कुछ हो सकता है। तो आप जाग जाएंगे। तीन महीने में उस सम्राट ने कहा कि मैं एकदम जागा हुआ हो गया हूं। विचार शांत हो गए, अहंकार का कोई पता नहीं चलता है। दूसरा पाठ क्या है?

उस वृद्ध फकीर ने कहा: कल रात से ही हमला शुरु होगा। कल तू रात में सोया रहेगा तब भी दो-चार दफे हमले होंगे। अब रात में भी सावधान रहना! उस सम्राट ने कहा: जागने तक भी गनीमत थी। अब यह बात जरा ज्यादा हुई जाती है। नींद में मैं क्या करूंगा? मेरा क्या बस होगा नींद में? वृद्ध ने कहा: नींद में भी बस है, तुझे पता नहीं। सपने भी तू जो देखना चाहता है, वही देखता है। नींद में भी बस है। नींद में भी तेरे भीतर कोई जागा हुआ है और होश में है। चादर सरक जाती है और किसी को नींद में पता चल जाता है कि चादर सरक गई है। एक छोटा सा मच्छर काटने लगता है और नींद में कोई जान जाता है कि मच्छर आ गया है।

एक मां रात में सोती है, उसका बच्चा बीमार है। आकाश में बादल गरजते रहें या प्रधानमंत्रियों के हवाई जहाज उड़ते रहें, उनकी इसे कोई खबर नहीं मिलती। लेकिन बच्चा बीमार है, वह जरा सी आवाज करता है और मां जग जाती है और हाथ फेरने लगती है और पुचकारने लगती है कि बेटे सो जा! कोई भीतर होश से भरा हुआ है कि बच्चा बीमार है।

हम इतने लोग यहां हैं, हम सो जाएं आज रात यहीं, और फिर आधी रात में आकर कोई बुलाने लगे, राम! राम! सारे लोग सोए रहेेंगे, किसी को सुनाई नहीं पड़ेगा। लेकिन जिसका नाम राम है, वह आंख खोल देगा और कहेगा, कौन बुलाता है? इस आधी रात में कौन परेशान करता है?

इस आधी रात की निद्रा में भी किसी को पता है कि मेरा नाम राम है। इस नींद में भी कोई होश, कोई कांशसनेस सरकती है भीतर, कोई अंडरकरेंट है, चेतना है, कोई अंतर-धारा है।

उस बूढ़े ने कहा: फिकर मत कर। हम तो चुनौती खड़ी करेंगे। भीतर जो सोया है वह जागना शुरु हो जाएगा। जागने का एक ही सूत्र है: चैलेंज! चुनौती! जितनी बड़ी चुनौती भीतर हो, उतना बड़ा जागरण होता है। इसलिए धन्यभागी हैं वे लोग जिनके जीवन में बड़ी चुनौतियां होती हैं। दूसरे दिन से हमला शुरु हो गया।

रात सम्राट सोता और हमला होता। आठ-दस दिन में फिर वही हालत हो गई पहले वाली। हड्डियां-हड्डियां दुखने लगीं। लेकिन एक महीना पूरा होते-होते सम्राट को पता चला कि बूढ़ा ठीक कहता था।

बूढ़े अक्सर ठीक कहते हैं। लेकिन जवान सुनते ही नहीं। और जब तक उन्हें समझ आती है, तब तक वे भी बूढ़े हो जाते हैं। फिर दूसरे जवान उनकी नहीं सुनते। तो सम्राट ने कहा: ठीक ही कहते थे शायद आप! अब नींद में भी उसके हाथ सम्हलने लगे। रात नींद में भी गुरु आता दबे पांव, तो भी नींद में कोई जाग जाता, वह युवक बैठ जाता और कहता कि ठीक है! माफ कीरिए! मैं जाग गया हूं। अब कष्ट मत उठाइए मारने का।

नींद में भी हाथ...रात भर उसका ढाल पर ही बना रहता था। नींद में भी ढाल उठ जाती। तीन महीने पूरे हुए और उस पर नींद में भी हमला करना मुश्किल हो गया। गुरु ने कहा: क्या हुआ इन तीन महीनों में? दूसरा पाठ पूरा होता है।

उस सम्राट ने कहा: बड़ा हैरान हूं। पहले तीन महीनों में विचार खो गया, दूसरे तीन महीनों में सपने खो गए, ड्रीम्स खो गए, रात भर सपना नहीं है। मैं तो सोचता था कि बिना सपने के नींद ही नहीं हो सकती। अब मैं जानता हूं कि सपने वालों की भी कोई नींद होती है। अदभुत शांति छा गई है भीतर! एक सन्नाटा, एक साइलेंस पैदा हो गया है। मैं बड़े आनंद में हूं।

उसके गुरु ने कहा: जल्दी मत कर। बड़ा आनंद अभी थोड़ा दूर है। यह तो केवल आनंद की शुरुआत की झलकें हैं। जैसे कोई आदमी बगीचे के पास पहुंचने लगे, तो ठंडी हवाएं आने लगती हैं, फूलों की थोड़ी-बहुत खुशबुएं हवा में आ जाती हैं। अभी बगीचा आया नहीं, लेकिन बगीचे की खबर आनी शुरु हो जाती है। अभी आनंद मिला नहीं। केवल बाहरी खबरें मिलनी शुरु हुई हैं। कल से तेरा तीसरा पाठ शुरु होगा।

उस युवक ने कहा: दो ही अवस्थाएं होती हैं जागने और सोने की। तीसरा पाठ क्या है?

उस बूढ़े ने कहा: कल से असली तलवार से हमला होगा। अब तक नकली तलवार से हमला चलता था।

वह युवक बोला: यह भी गनीमत थी कि आप लकड़ी की तलवार से हमला करते थे। यह तो जरा ज्यादा हो जाएगी बात। असली तलवार से हमला? अगर मैं एक भी बार चूक गया तो जान गई!

उस बूढ़े ने कहा: जब यह पक्का पता हो कि एक भी बार चूका कि जान गई, तब कोई भी नहीं चूकता है। चूकता आदमी तभी तक है जब तक उसे पता चलता है कि चूक भी जाऊं तो कुछ जाने को नहीं। एक बार पता चल जाए कि चूका कि जान गई, तब प्राण अपनी पूरी ऊर्जा से जगते हैं, फिर चूकने का कोई मौका नहीं रह जाता।

उस बूढ़े ने कहा: मेरा गुरु था जिसके पास मैं सीखता था। उसने मुझे एक दिन सौ फीट ऊंचे दरख्त पर चढ़ा दिया। वह मुझे दरख्तों पर चढ़ना सिखाता, पहाड़ों पर चढ़ना सिखाता, नदियों में तैरना सिखाता, झीलों में डूबना सिखाता। वह बड़ा अजीब गुरु था। वह कहता था: जो पहाड़ पर चढ़ना नहीं जानता है, वह जीवन में चढ़ना क्या जानेगा? जो झीलों की गहराइयों में डूबना नहीं जानता, वह प्राणों की गहराइयों में डूबना क्या जानेगा? वह बड़ा अजीब गुरु था। उसने मुझे एक दरख्त पर चढ़ा दिया। मैं नया-नया चढ़ा था। जब मैं सौ फीट ऊपर पहुंच गया और जहां प्राण कंपते थे कि हवा का एक झोंका कहीं जान लेने वाला न बन जाए। पैर का जरा सरक जाना कहीं मौत न बन जाए।

वह गुरु चुपचाप नीचे आंख बंद किए झाड़ के पास बैठा रहा। फिर मैं धीरे-धीरे उतरने लगा। जब मैं जमीन के बिल्कुल करीब आ गया, कोई आठ-दस फीट दूर रह गया, तब वह बूढ़ा जैसे नींद से उठ गया और खड़ा हो गया और कहने लगा: सावधान बेटे! सम्हल कर उतरना। होशियारी से उतरना।

मैंने कहा: पागल हो गए हैं आप? जब जरुरत थी सावधानी की, तब आंख बंद किए सपने देख रहे थे, और अब जब मैं नीचे आ गया हूं, अब अगर गिर भी जाऊं तो कोई खतरा नहीं है, तब आपको होशियारी की याद दिलाने का ख्याल आया?

वह बूढ़ा कहने लगा: मैं अपने अनुभव से जानता हूं, जब तू सौ फीट ऊपर था, तब किसी को सावधान करने की कोई जरुरत न थी। तू खुद ही सावधान था। और अभी-अभी मैंने देखा है कि जैसे-जैसे जमीन करीब आने लगी है, तू गैर-सावधान

होना शुरू हो गया। नींद पकड़ गई है तुझे। तो मैंने चिल्लाया कि सावधान! क्योंकि मैंने जीवन में देखा है लोग ऊंचाइयों से कभी नहीं गिरते, नीचाइयों पर गिर जाते हैं और मर जाते हैं। मैंने आज तक जिंदगी में देखा ही नहीं कि कोई आदमी कभी ऊंचाइयों से गिरा हो। लोग नीचाइयों में गिरते हैं और मर जाते हैं। इसलिए तुझे सावधान कर दिया।

उस बूढ़े ने कहा: कल से असली तलवार आती है। और कल से असली तलवार आ गई। लेकिन बड़ा हैरान हुआ वह सम्राट! लकड़ी की तलवार पर तो बहुत चोट उसके शरीर पर लगी थी, लेकिन असली तलवार से तीन महीने में एक भी चोट नहीं मारी जा सकी। तीन महीने पूरे होने को आ गए। उसका मन एक शांति का सरोवर हो गया। उसका अहंकार कहीं दूर छूट गया किसी रास्ते पर, पता नहीं कहां रह गया! जैसे जीर्ण-शीर्ण वस्त्र छूट जाते हैं या सांप अपनी केंचुल को छोड़ कर आगे बढ़ जाता है, वह कहीं छोड़ आया है पीछे उसको। याद भी नहीं रहा कि कभी मैं भी था। इतनी शांति हो गई है कि वहां कोई लहर भी नहीं उठती उस झील में।

तीन महीने पूरे होने को आ गए हैं। आज आखिरी दिन है। कल वह विदा हो जाएगा। उसके मन में ख्याल आया..सुबह-सुबह सूरज निकला है, वह बैठा है झोपड़े के बाहर..उसका गुरु काफी दूरी पर एक दरख्त के नीचे बैठ कर कोई किताब पढ़ रहा है। अस्सी साल का वृद्ध। उसके मन में ख्याल आया है..इस बूढ़े ने नौ महीने तक मुझे एक क्षण भी आलस्य में नहीं जाने दिया, एक क्षण भी प्रमाद नहीं करने दिया। हमेशा जगाए रखा। सावधान रखा। कल तो मैं विदा हो जाऊंगा। यह गुरु भी उतना सावधान है या नहीं, यह भी तो मैं देख लूं? तो उसने सोचा कि उठाऊं तलवार और आज उस बूढ़े पर पीछे से हमला कर दूं। मुझे भी तो पता चल जाए कि हमी को सावधान किया जाता है या ये सज्जन खुद भी सावधान हैं? उसने इतना सोचा ही था, सिर्फ सोचा ही था, अभी कुछ किया नहीं था। अभी सिर्फ सोचा था, बस सोचा था और उधर गुरु चिल्लाया उस झाड़ के नीचे से कि बेटा, ऐसा मत करना, मैं बूढ़ा आदमी हूं! वह बहुत हैरान हुआ! उसने कहा: मैने कुछ किया नहीं, मैंने केवल सोचा है।

तो उसे बूढ़े ने कहा: तू थोड़े दिन और ठहर जा। जब चित्त बिल्कुल शांत हो जाता है और मौन हो जाता है, जब अहंकार से बिल्कुल विदा हो जाती है, और जब विचार शून्य और शांत हो जाते हैं तब दूसरों के पैरों की ध्वनि ही नहीं सुनाई पड़ती, दूसरों के चित्त की पग-ध्वनियां भी सुनाई पड़ने लगती हैं। तब दूसरों के विचारों के पैर भी सुनाई पड़ने लगते हैं। विचार भी सुनाई पड़ने लगते हैं दूसरे के।

हम तो ऐसे अंधे हैं कि हमें दूसरों के कृत्य भी नहीं दिखाई पड़ते। विचार सुनाई पड़ना तो बहुत दूर की बात है।

लेकिन उस बूढ़े ने कहा था, जिस दिन इतना शांत हो जाता है चित्त, इतना जागरूक, उस दिन ही वह जो अदृश्य है, उसकी झलक मिलती है। उस परमात्मा के पैर सुनाई पड़ने लगते हैं, जिसके कोई पैर नहीं हैं। उस परमात्मा की वाणी आने लगती है, जिसकी कोई वाणी नहीं है। उस परमात्मा का स्पर्श मिलने लगता है, जिसकी कोई देह नहीं। सब तरफ फिर वह मौजूद हो जाता है।

जिस दिन हमारे भीतर वह रिसेप्टिविटी, वह ग्राहकता उत्पन्न होती है शांति की, उसी दिन वह सब तरफ मौजूद हो जाता है। फिर वृक्ष के पत्तों में वही है, राह के पत्थरों में वही है, सागर की लहरों में भी, आकाश के बादलों में भी, आदमियों की आंखों में भी, पशु-पक्षियों के प्राणों में भी..फिर सबमें वही है। जिस दिन भीतर वह रिसेप्टिविटी, वह जीवन की पग-ध्वनि सुनने की ग्राहकता उपलब्ध हो जाती है, वह पात्रता उपलब्ध हो जाती है।

पता नहीं उस सम्राट का फिर क्या हुआ। पता नहीं उस बूढ़े फकीर का फिर क्या हुआ। लेकिन मुझे और आपको, उससे प्रयोजन भी क्या है? जहां उनकी कहानी खतम होती है, अगर वहीं आपकी कहानी शुरू हो जाए, तो बात पूरी हो जाती है। क्या आप भी अपने भीतर इतने जागने का सतत श्रम करने को तत्पर हैं? अगर हां, तो जीवन की संपदा आपकी है। अगर हां, तो परमात्मा खुद आपके द्वार चला आएगा। आपको उसके द्वार जाने की जरूरत नहीं। और यह बात कितनी ही कठिन मालूम पड़ती हो, जो लोग चलने के आदी नहीं होते, उन्हें यात्राओं की लंबाइयां बहुत बड़ी दिखाई पड़ती हैं। उन्हें डर

लगता है, एक ही, छोटे से तो पैर हैं हमारे पास, हजारों मील की यात्रा हम कैसे पूरी कर सकेंगे? लेकिन अगर एक कदम भी उठाने के लिए वे तैयार हो जाएं, तो हर कदम उठाया गया आने वाले कदम के लिए भूमि बन जाता है, बल बन जाता है, शक्ति बन जाता है। और छोटे से कदमों से आदमी पूरी पृथ्वी की परिक्रमा कर सकता है। और छोटे से मन की सामथ्र्य, छोटे से प्राणों की सावधानी से, थोड़े से हृदय की शांति से मनुष्य परमात्मा की परिक्रमा भी कर सकता है।

इन तीन दिनों में तीन छोटी सी बातें मैंने आपसे कहीं..आनंद का भाव। अहोभाव। अज्ञान का बोध। और आज आपसे कहता हूं: स्वयं के जीवन-कृत्यों, विचारों के प्रति जागरूकता।

तीन खूंटियां मैंने आपसे कहीं। थोथे ज्ञान की खूंटी है, दुखपूर्ण जीवन को देखने की वृत्ति की खूंटी है, और अस्मिता की, अहंकार की, ईगो की खूंटी है। इन तीन से जो मुक्त हो जाता है उसकी नौका परमात्मा के सागर की यात्रा पर निकल जाती है। फिर उसे नाव खेनी भी नहीं पड़ती। वे पागल युवक रात भर नाव खेते रहे!

रामकृष्ण कहते थे: एक बार नाव की जंजीर तो खोल दो। एक बार नाव का पाल तो खोल दो। फिर तो उसकी हवाएं नाव को ले जाएंगी, गंतव्य तक पहंुचा देंगी, मंजिल तक पहुंचा देंगी। फिर तुम्हें पतवार भी नहीं चलानी होगी। उसकी हवाएं तुम्हें ले जाएंगी। उसकी हवाएं ले जाने को हमेशा खड़ी हैं। लेकिन हमारी नाव बंधी है, हमारा पाल बंधा है। हम व्यर्थ ही श्रम किए जाते हैं और व्यर्थ हुए जाते हैं।

ये थोड़ी सी बातें तीन दिनों में मैंने कहीं। हो सकता है कोई बात आपके प्राणों के किसी कोने में बीज बन जाए और अकुंरित हो उठे और कोई वृक्ष बन जाए। वह वृक्ष आपको भी छाया देगा और उन सबको भी, जो आपके निकट हैं। वैसा छायादार वृक्ष बन जाना ही धार्मिक जीवन को उपलब्ध कर लेना है।

मेरी बातों को इतनी शांति से तीन दिन सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।

और अंत में एक छोटी सी बात, जो श्री दुर्लभ जी भाई खेतानी ने कही, उसके संबंध में दो शब्द कह कर मैं अपनी बात पूरी कर देता हूं।

देश को, समाज को, मनुष्य को, जैसा वह आज है, उसे देख कर जिस आदमी के हृदय में आंसू न भर जाते हों, वह आदमी या तो मर चुका है या मरने के करीब है। जो आदमी भी जीवित है, वह आज के देश की, आज के समाज की, आज के मनुष्य की दशा को देख कर रोता होगा। उसकी हंसी झूठी होगी, उसकी रातें उसके तकियों को उसकी आंखों के आंसुओं से गीला कर देती होंगी। मुझे पता नहीं आपका, लेकिन मैं अंधकार में अक्सर रो लेता हूं। आदमी जैसा है उसे देख कर सिवाय रोने के और कुछ ख्याल भी नहीं आता। लेकिन रोने से कुछ भी नहीं हो सकता है। कुछ करना जरूरी है। और अगर हम कुछ नहीं कर सके गिरते हुए चरित्र में खोती हुई आत्मा के लिए, पूरे देश की प्रतिभा नष्ट होती हो, पूर प्राण बिखरते जाते हों, आदमी रोज नीचे से नीचे उतरता जाता हो, और अगर हम कुछ न कर सके, तो आने वाले भविष्य की अदालत में हम अगर अपराधी ठहराए जाएं तो कोई आश्चर्य नहीं होगा।

हम अपराधी हैं। हम आने वाले जीवन के लिए क्या छोड़ जाते हैं? हम आने वाले बच्चों और पीढ़ियों के लिए क्या निर्मित कर रहे हैं? हम उन्हें कौन सा जीवन दे रहे हैं? हम उन्हें कौनसा मार्ग दे रहे हैं? हम उन्हें कौनसा संकल्प दे रहे हैं? हम उन्हें कौनसी आशा दे रहे हैं? कौनसा भविष्य दे रहे हैं? कौनसी डेस्टिनी दे रहे हैं?

हम कुछ भी नहीं दे रहे हैं। हम कुछ बीमारियां दे रहे हैं। कुछ रुग्णताएं दे रहे हैं। कुछ पागलपन दे रहे हैं। हम बच्चों को विक्षिप्त बनाने की दिशा में अग्रसर कर रहे हैं।

इधर जितना यह सब जब मैं देखने लगा और देश के कोने-कोने में गया और लाखों लोगों की आंखों में झांका, और एक भी आंख में मुझे आनंद की कोई झलक न मिली; और एक भी प्राण में मुझे कोई संगीत गूंजता हुआ सुनाई नहीं पड़ा; और एक भी व्यक्ति मुझे ऐसा नहीं मिला जिसे हम कह सकें कि उसे जीवन को पाकर वह धन्य हो गया है।

तो मेरी रातें बहुत दुख और अंधेरे और आंसुओं से भर गई हैं। और इधर मुझे लगने लगा कि कुछ किया जाना जरूरी है। चुपचाप राह के किनारे खड़े होकर देखना खतरनाक है। और जो आदमी चुपचाप राह के किनारे खड़े होकर देखता है, वह भी भागीदार है, वह भी हिस्सेदार है, वह भी...अगर गलत हो रहा है तो जिम्मेवारी उसकी भी होगी। गए वे दिन जब संन्यासी दूर खड़े हो जाते और कहते कि जीवन से हमें क्या लेना-देना। इन्हीं संन्यासियों ने, जीवन को नहीं बदला जा सका अगर, तो इन्हीं संन्यासियों पर उसकी जिम्मेवारी चली जाएगी। वे बदल सकते थे जिंदगी को, अगर वे कहते कि हमें जिंदगी से बहुत कुछ लेना-देना है, हम जिंदगी को गलत देखने को राजी नहीं हैं। हम जीएंगे तो जिंदगी को ठीक बनाने के प्रयास में जीएंगे।

इधर एक संकल्प, इधर कोई परमात्मा की आवाज जोर से मेरे मन में कहने लगी कि मुझमें जो बन सके थोड़ा वह करना चाहिए। हो सकता है एक ही आदमी बदल सके। तो बहुत बड़ी बात हो जाएगी। अंधेरे घर में एक भी दीया जल जाए तो बहुत बड़ी बात हो जाती है। फिर इस दिशा में यह थोड़ा सा सोचा कि कोई एक केंद्र हो और वहां मनुष्य के जीवन के परिवर्तन की कला, आर्ट ॲाफ लिविंग पर, जीवन को बदीलने के विज्ञान पर, जीवन को बदलने की दिशा में कुछ किया जा सके। बहुत कुछ किया जा सकता है। आदमी बिल्कुल नया किया जा सकता है। आदमी के भीतर बिल्कुल नई चेतना को जन्म दिया जा सकता है। क्योंकि मेरा ख्याल यह है कि जब गलत हो सकता है आदमी, तो ठीक भी हो सकता है, क्योंकि अगर वह ठीक न हो सकता हो, तो फिर गलत भी नहीं हो सकता है। जो आदमी बीमार हो सकता है वह स्वस्थ भी हो सकता है। अगर स्वस्थ न हो सकता हो, तो फिर बीमारी की भी कोई संभावना नहीं रह जाती।

आदमी गलत है, सब भांति गलत है। वह ठीक भी हो सकता है। इस दिशा में मैं क्या कर सकता हूं? मेरी आवाज अकेली है। लेकिन फिर बहुत मित्रों को पास पाकर मुझे ऐसा ख्याल हुआ कि आवाज अकेली नहीं है, बहुत से हृदयों की धड़कन उसके साथ हो सकती है। बहुत से लोग उसमें सहभागी और साझेदार हो सकते हैं। और एक जीवन-क्रांति का पूरा आंदोलन, जीवन-क्रांति का एक पूरा विश्वविद्यालय, और मुल्क के कोने-कोने तक आदमी को बदलने के लिए चुनौती और प्रेरणा देने वाली कोई हवा बहाई जा सकती है। तो उस हवा के बहाने में आपका भी साथ मिले, इसके लिए निवेदन और प्रार्थना करता हूं।

वह साथ आपके पैसे का उतना नहीं है। पैसे का कोई भी बड़ा मूल्य नहीं है। वह आपके प्रेम का साथ है। अगर आप हृदय से साथ हैं, तो पैसा उसके लिए बहुत इकट्ठा हो जाएगा। वह कभी सवाल ही नहीं है। और अगर आप हृदय से साथ नहीं हैं, तो कितना ही पैसा इकट्ठा हो जाए, उसका दो कौड़ी कोई मूल्य नहीं है।

तो मैं आपके प्रेम के लिए और आपके साथ और शुभकामना के लिए प्रार्थना करता हूं। उस शुभकामना के पीछे और सब अपने आप चला आता है। अगर आपको लगता है, अगर आपके प्राणों में कहीं ऐसा प्रतीत होता है, कहीं हृदय में ऐसी कोई आवाज उठती है कि इस देश के लिए, समाज के लिए, मनुष्य के लिए कुछ किया जाना जरूरी है, कोई संकल्प पैदा होना जरूरी है, कोई आंदोलन, कोई हवा, मनुष्य की आत्मा को जगाने के लिए कोई तीव्र विचार देश के कोने-कोने तक गूंज जाना जरूरी है। अगर ऐसा प्रतीत होता है तो प्रतीत होने के बाद अगर आप दूर खड़े रहते हैं, तो मुल्क के उन हत्यारों में आपकी भी गिनती होगी जो चारों तरफ मुल्क की हत्या किए जा रहे हैं। उसमें राजनीतिज्ञ सम्मिलित हैं, धर्मगुरु सम्मिलित हैं, और न मालूम किस-किस तरह के लोग सम्मिलित हैं। उसमें सब तरह के लोग सम्मिलित हैं मुल्क की हत्या करने में।

उस मुल्क को बड़ी हत्या से बचाने के लिए आपका साथ, आपकी मैत्री, आपके प्रेम की मैं मांग करता हूं। और यह मांग भीख नहीं है। यह मांग मैं अपना अधिकार मान लेता हूं। जिन्हें मैं प्रेम करता हूं उनसे मैं अधिकार पूर्वक मांग सकता हूं। और जो मैं मांगूंगा उसके लिए आप देंगे तो मैं आपको धन्यवाद भी देने वाला नहीं हूं। धन्यवाद आपको ही मुझे देना पड़ेगा कि मैं उसे लेने को राजी हो गया हूं। पैसे का हिसाब-किताब तो दुर्लभजी भाई रखेंगे, लेकिन मैं आपका हिसाब-किताब रखना चाहूंगा।

तो अगर इस संकल्प में, इस महा संकल्प में, शुभ संकल्प में आपके मन की धड़कन साथ है, तो मैं चाहूंगा कि आप अपने दोनों हाथ उठा कर मुझे बल दे दें कि आप मेरे साथ हैं। जो भी साथ हैं वे अपने दोनों हाथ ऊपर उठा लें। वह उनके प्रेम का साथ है..न उनके पैसे का, न उनकी किसी और शक्ति का, उनके हृदय का और उनकी आत्मा का। मैं आपको धन्यवाद देता हूं और प्रार्थना करता हूं कि आपने जो संकल्प जाहिर किया है वह संकल्प मेरा या आपका नहीं, परमात्मा का होगा, और उससे कुछ परिणाम निकल सकते हैं।

अंत में तीन दिनों तक मेरे पास बैठ कर इतने प्रेमपूर्ण, इतनी शांति से मेरी बातों को सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुग्रह प्रकट करता हूं। और सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

आत्म-बोध -- मैं कौन हूं?
जीवन क्रांति की दिशा-4

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक गांव में एक आदमी पागल हो गया था, वह जगह-जगह खड़े होकर पूछने लगा था कि मैं कौन हूं? एक ही बात पूछने लगा था कि मैं कौन हूं? सारे गांव के लोगों ने समझ लिया था कि वह पागल हो गया है। मैं भी उस गांव में गया था। उस आदमी को मैंने भी चिल्लाते सुना कि मैं कौन हूं? दिन में, रात में, सुबह-सांझ, मकान में, सड़क पर, बाजार में वह आदमी यही चिल्लाता घूमता था कि मैं कौन हूं? कोई मुझे बता दे कि मैं कौन हूं?

मैंने लोगों से पूछा: इसे क्या हो गया है? उन्होंने कहा: यह आदमी पागल हो गया है, क्योंकि इसे यह भी पता नहीं है कि यह कौन है। मैंने उन लोगों से कहा: अगर पागल होने का यही लक्षण है कि जिसे पता न हो कि वह कौन है, तो फिर सभी मनुष्य पागल हैं। फिर पूरी मनुष्य-जाति ही पागल है।

लेकिन अगर सभी लोग पागल हों, तो पता चलना बहुत कठिन हो जाता है कि कोई पागल है। एक आदमी पागल हो, तो पता पड़ जाता है। और सभी लोग एक ही बीमारी से ग्रसित हो जाएं, तो पता चलना बहुत कठिन हो जाता है।

आदमियत बुनियाद से ही अस्वस्थ है। आदमी जन्म से ही विक्षिप्त है। क्योंकि जिसे यह भी पता न हो कि मैं कौन हूं, उसे और कुछ भी पता नहीं हो सकता है। फिर इस अज्ञान में किए गए सभी कर्म, फिर इस अज्ञान में की गई सारी यात्रा ही, अगर और गहरे से गहरे पागलपनों में ले जाती हो तो कोई आश्चर्य नहीं। लेकिन जैसा मैंने कहा, अगर सभी लोग एक ही बीमारी से घिर जाएं, तो पता चलना कठिन है कि कोई बीमार है।

एक गांव में ऐसा हुआ था, एक जादूगर आया और उसने गांव के कुएं में कोई मंत्र फेंका और कहा कि इस कुएं का पानी जो कोई भी पीएगा वह पागल हो जाएगा। उस गांव में दो ही कुएं थे। एक गांव का कुआं था और एक सम्राट का कुआं था। सारे गांव को, उस कुएं का पानी पीना पड़ा। मजबूरी थी, कोई रास्ता न था। प्यास लगे और अगर पागल भी होना पड़े तो भी पानी तो पीना ही पड़ेगा।

सांझ होते-होते सारा गांव पागल हो गया। सिर्फ सम्राट बच गया, उसका वजीर बच गया, उसकी रानी बच गई। सम्राट बहुत प्रसन्न था कि सौभाग्य है हमारा कि हमारे घर में अलग कुआं है। लेकिन सांझ होते-होते उसे पता चला कि सौभाग्य नहीं, यह दुर्भाग्य है। क्योंकि जब सारा गांव पागल हो गया, तो गांव में जगह-जगह यह चर्चा होने लगी कि मालूम होता है राजा पागल हो गया। और शाम होते-होते सारे गांव के लोग महल के सामने इकट्ठे हो गए और उन्होंने कहा, पागल राजा को अलग करना जरूरी है। क्योंकि पागल राजा से कैसे देश चलेगा।

राजा अपनी छत पर खड़ा घबड़ाने लगा। उसके सैनिक भी पागल हो गए थे, उसके पहरेदार भी पागल हो गए थे, उसके रक्षक भी पागल हो गए थे। और वे सभी पागल यह कह रहे थे कि सम्राट पागल हो गया है। हमें कोई स्वस्थ आदमी चुनना पड़ेगा। सम्राट ने अपने वजीर को कहा: कोई रास्ता है बचने का? कोई मार्ग है? उस वजीर ने कहा: हम पीछे के रास्ते से भाग चलें और उस कुएं का पानी पी लें जिस कुएं का पानी इन सबने पीया है। इसके अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं है।

सम्राट भागा गया और उसने उस कुएं का पानी पी लिया। फिर उस रात उस गांव में बड़ा जलसा मनाया गया और बड़ा उत्सव हुआ। लोग नाचे और उन्होंने गीत गाए और भगवान को धन्यवाद दिया कि सम्राट का मस्तिष्क ठीक हो गया।

मनुष्य-जाति जन्म से ही कुछ विकृत है। आदमी का अस्वास्थ्य जैसे उसके साथ है। स्वस्थ होना एक घटना है। अस्वस्थ होना जैसे स्वाभाविक है। मस्तिष्क के लिए, मनुष्य की चेतना के लिए अगर यह भी पता न हो कि मैं कौन हूं, तो यह विक्षिप्तता का ही लक्षण होगा। आत्म-बोध मनुष्य के स्वास्थ्य की, आत्म-बोध मनुष्य के चेतना के स्वस्थ होने का पहला लक्षण है। और आत्म-अबोध मनुष्य के विक्षिप्त होने का लक्षण है।

धर्म को मैं न तो पूजा मानता हूं, न प्रार्थना। न धर्म को मैं कोई शास्त्र मानता हूं, न कोई फिलॉसफी। धर्म मनुष्य के इस आत्मिक अस्वास्थ्य का उपचार है। धर्म चिकित्सा है। मनुष्य की वह जो बुनियादी विक्षिप्तता है, उसका इलाज है, उसके ठीक करने की विधि है। लेकिन मनुष्य स्वयं को जान क्यों नहीं पाता है? और अगर हम यह न समझ पाएं कि मनुष्य स्वयं को क्यों नहीं जान पाता है, तो आत्मबोध की कोई यात्रा नहीं की जा सकती है।

और संभावना तो इस बात की है कि हम जो भी करते हैं जीवन में, वह सब आत्म-बोध को छिपाने का कारण बनता है, उघाड़ने का नहीं। स्वयं को जानने की दिशा में हमारे कोई प्रयास ही नहीं हैं। और जिन प्रयासों को हम स्वयं को पाने के प्रयास समझते हैं, वे और भी स्वयं के विस्मरण की विधि बनते हैं।

हम अपने को जानते हैं उतनी ही गहराई तक जितने गहरे हमारे वस्त्र होते हैं। वस्त्रों से ज्यादा गहरा हमारा आत्म-परिचय नहीं है। वस्त्र बहुत प्रकार के हो सकते हैं। जो कपड़े हम शरीर पर पहने होते हैं वे भी हमारे वस्त्र हैं, जो नाम और पद हम अपने मन में लिए होते हैं वे भी हमारे वस्त्र हैं, जो चेहरे, जो अभिनय हम ओढ़े रहते हैं वे भी हमारे वस्त्र हैं। हम अपने संबंध में जो भी जानते हैं वह अपने संबंध में नहीं केवल अपने वस्त्रों के संबंध में है। और कोई हमारे वस्त्र छीन ले, तो हम इसी क्षण पागल हो जाएंगे। क्योंकि हमें भूल जाएगा यह ठिकाना, यह पता कि हम कौन थे?

एक अदभुत व्यक्ति हुआ है, वह कुछ अपने ही किस्म का व्यक्ति होगा। उसका नाम, वह एक फकीर था, उसका नाम था, मुल्ला नसरुद्दीन। वह एक रात एक सराय में ठहरा। सराय भरी हुई थी और सराय में कोई कमरा खाली न था। सराय के मालिक से उसने बहुत प्रार्थना की कि रात बहुत सर्द है और बाहर मैं कैसे रह सकूंगा? मुझे किसी के भी कमरे में ठहर जाने दें। मैं किसी के साथ ठहर जाऊंगा। एक आदमी को राजी किया गया और नसरुद्दीन उस आदमी के साथ ठहरा दिया गया।

वह आदमी अपने वस्त्र निकाल कर बिस्तर पर सो गया, लेकिन नसरुद्दीन अपने जूते, अपनी पगड़ी, अपना कोट पहने हुए बिस्तर पर सो गया। वह आदमी बहुत हैरान हुआ कि क्या इस आदमी को सोने का ढंग भी पता नहीं है। जूते और पगड़ी और कोट सब पहने हुए बिस्तर पर सो गया है। पर उसने कुछ कहना ठीक न समझा। अजनबी से कुछ कहना ठीक भी न था, अपरिचित से कुछ कहना ठीक भी न था। लेकिन रात गहरी होने लगी और यह मुल्ला नसरुद्दीन करवट बदलने लगा, लेकिन नींद का कोई पता नहीं। इसकी नींद न लगे। इसके करवट के कारण वह दूसरा आदमी भी नहीं सो पा रहा था। आखिर उसने कहा कि महानुभाव, मैं आपसे प्रार्थना करता हूं, आप नहीं सो सकेंगे, जब तक आप जूते और पगड़ी और कपड़े नहीं उतारते।

नसरुद्दीन ने कहा: सोच तो मैं भी यही रहा हूं कि नहीं सो सकूंगा। अगर मैं अकेला होता तो मैं कपड़े निकाल देता। लेकिन तुम भी कमरे के भीतर हो, इसलिए मैं कपड़े नहीं निकाल सकता हूं।

उस आदमी ने कहा: मतलब? नसरुद्दीन ने कहा: मतलब यह है कि अगर सारे कपड़े निकाल कर मैं सो गया, तो सुबह मैं कैसे पहचानूंगा कि मैं कौन हूं और तुम कौन हो? इन कपड़ों से ही अपने को पहचानता हूं कि मैं कौन हूं। अकेला होता तो मैं कपड़े निकाल कर सो जाता। सुबह उठ कर पहचान लेता कि मैं ही होऊंगा, क्योंकि और कोई तो मौजूद नहीं है। लेकिन अभी सब कपड़े निकाल दूंगा तो सुबह पहचान कैसे पाऊंगा कि कौन कौन है?

नसरुद्दीन आदमी के ऊपर मजाक कर रहा था, लेकिन वह अजनबी नहीं समझ सका। उसने कहा: तो फिर एक काम करो। हमसे पहले जो लोग इस कमरे में ठहरे होंगे उनके बच्चे कुछ गुब्बारे छोड़ गए थे, तो उसने कहा कि कपड़े निकाल लो और एक गुब्बारा अपने पैर से बांध लो। तुम्हें पता चल जाएगा सुबह कि गुब्बारा बंधा हुआ आदमी तुम हो।

नसरुद्दीन ने कहा: यह बात समझ में पड़ती है। उसने सारे कपड़े निकाल दिए और गुब्बारा पैर से बांध कर वह सो गया और खर्राटे लेने लगा।

उस दूसरे आदमी को मजाक सूझी, उसने जो नसरुद्दीन सो गया, तो उसका गुब्बारा निकाल कर अपने पैर में बांध लिया और वह भी सो गया।

चार बजे के करीब नसरुद्दीन उठा और दूसरे आदमी को हिलाने लगा और उसने कहा कि मुझे डर था वही भूल हो गई। गुब्बारा तुम्हारे पैर में बंधा है, तुम मुल्ला नसरुद्दीन हो, तो फिर मैं कौन हूं? यह मुश्किल हो गई। मुल्ला नसरुद्दीन ने गुब्बारा बांधा था, वह तुम हो। अब मैं कौन हूं? उस आदमी ने समझा होगा मुल्ला नसरुद्दीन पागल है। लेकिन नसरुद्दीन सारे आदमियों के ऊपर व्यंग्य कर रहा था, सारी आदमियत पर मजाक कर रहा था।

हम भी अपने को किन बातों से पहचानते हैं? गुब्बारों से पहचानते हैं जो हमारे हाथ और पैरों में बांध दिए गए हैं। कोई आदमी नाम लेकर पैदा नहीं होता, मां-बाप एक गुब्बारा पैर में बांध देते हैं कि तेरा यह नाम है, तू राम है, तू कृष्ण। और जिंदगी भर वह यही पहचानता रहता है कि मैं राम हूं और मैं कृष्ण हूं। और कहीं उसका यह नाम का गुब्बारा अलग कर लिया जाए, तो वह खड़ा हो जाएगा पागल की तरह पूछेगा कि मैं कौन हूं?

नाम कोई सच्चाई नहीं है, एक झूठ है जो आदमी की पहचान के लिए चिपका दिया जाता है। लेकिन फिर नाम ही सच्चाई हो जाती है, वही हमारा रिकग्नीशन, वही हमारी प्रतिभिज्ञा हो जाती है, वही हमारी पहचान हो जाती है। और दूसरे हमें उससे पहचानते, यह तो ठीक था, हम भी अपने को उसी नाम से पहचानने लगते हैं। ठीक थी यह बात कि दूसरे हमें हमारे नाम से पहचान लेते। जिंदगी में काम चलाने के लिए यूटिलिटेरियन, उपयोगिता है नाम की, दूसरे उससे हमें पहचान लेते हैं। लेकिन भूल तो यहां हो जाती है कि फिर हम भी अपने को उसी नाम से पहचानते हैं जो बिल्कुल झूठा और कल्पित है।

किसी आदमी का कोई भी नाम नहीं है, लेकिन उसी नाम के आस-पास जो बिल्कुल इमेजिनेशन है, जो बिल्कुल कल्पना है, हम अपने सारे व्यक्तित्व को गढ़ते हैं, खड़ा करते हैं, बड़ा करते हैं, सारा भवन बनाते हैं और इसको हम जीवन कहते हैं। यह जीवन अगर पूरा झूठा हो तो आश्चर्य नहीं है। क्योंकि एक झूठ के आस-पास बुना जाता है, इर्द-गिर्द बनाया जाता है। और नाम के लिए हम पागल रहते हैं और पागल होते हैं और पागल की तरह मर जाते हैं; उस नाम के लिए, जिससे हमारा दूर का भी कोई नाता नहीं था; जिससे हमारा कोई भी संबंध नहीं था; जो हमारी आत्मा नहीं थी; जो हमारा व्यक्तित्व न था; जो हमारी आथेंटिक बीइंग न थी। जो हमारी प्रामाणिक सत्ता न थी। उस नाम के लिए हम जीते हैं और समाप्त हो जाते हैं। उन बच्चों की तरह शायद जो नदी की रेत पर जाते हैं और हस्ताक्षर कर आते हैं और बड़े खुश लौट आते हैं। और उन्हें पता भी नहीं कि वे लौटे भी नहीं हैं कि हवाओं ने हस्ताक्षर मिटा दिए हैं रेत पर उनके। और नदी का बहाव आया है और उनके सब नाम बहा कर ले गया है।

लेकिन बच्चों पर हम हंसते हैं और बच्चों से शायद हम कहेंगे कि पागलो, रेत पर हस्ताक्षर नहीं किए जाते। रेत तो मिट जाती है, हवाएं रेत को मिटा देती हैं। लेकिन बूढ़े भी क्या करते हैं, चट्टानों पर हस्ताक्षर करते हैं और शायद सोचते हैं कि चट्टान और रेत में कोई बहुत फर्क है। रेत से चट्टान बनती है, चट्टान फिर रेत हो जाती है। रेत कभी चट्टान रही है, चट्टान कभी रेत थी। और उस पर हस्ताक्षर किए जाते हैं और जीवन भर सोचते हैं कि हमने कुछ उपलब्ध कर लिया है, क्योंकि हमने कहीं हस्ताक्षर कर दिए हैं। हमने कहीं वह नाम खोद दिया है जो मेरा था। और नाम का मेरे 'मैं' से कोई भी संबंध नहीं है, कोई भी वास्ता नहीं है।

नाम के बोध को हम आत्म-बोध समझ लेते हैं। नाम का बोध आत्म-बोध नहीं है। इससे ज्यादा दूरी पर और फासले पर दो चीजें नही हो सकतीं। नाम आत्मा से उतने ही दूर है जितनी दूर जमीन से आसमान होगा। इनके बीच कोई संबंध नहीं है, कोई नाता नहीं है। लेकिन इस नाम के आस-पास हम वस्त्रों को इकट्ठा करते हैं, इकट्ठा करते हैं। विशेषता के वस्त्र हैं, पदों के वस्त्र हैं, प्रतिष्ठाओं के वस्त्र हैं, राष्ट्रपतियों के वस्त्र हैं, और हम इकट्ठे करते चले जाते हैं, इकट्ठे करते चले जाते हैं। इस झूठे नाम के आस-पास जो वस्त्रों की कतार और भीड़ इकट्ठी हो जाती है, वही मनुष्य का अहंकार बन जाता है, वही उसकी ईगो है।

हमें अहंकार का तो बोध है, लेकिन आत्मा का कोई बोध नहीं है। और जब तक अहंकार का बोध है तब तक आत्मा का बोध हो भी नहीं सकता है।

आत्म-बोध की दिशा में अगर कोई सबसे बड़ी बाधा है, तो वह अहंकार है। या जैसा मैंने पहले कहा, आदमी की विक्षिप्तता में, आदमी की मैडनेस में, उसकी इंसेनिटी में, अगर सबसे बड़ी कोई चीज किसी कुएं का पानी काम कर रहा है, तो वह अहंकार के कुएं का पानी है। वह उसे पागल किए देता है, वह उसे पागल बनाए चले जाता है। वह उसे विक्षिप्त से विक्षिप्त कर देता है। क्योंकि असत्य के इर्द-गिर्द जो अपने व्यक्तित्व को बनाएगा, वह विक्षिप्त ही हो सकता है, वह स्वस्थ नहीं हो सकता। स्वास्थ्य उपलब्ध होता है सत्य की परिधि पर। अस्वास्थ्य उपलब्ध होता है असत्य की परिधि पर। और अहंकार से बड़ा असत्य कुछ भी नहीं, वह सबसे बड़ी फॅालसिटी है, क्योंकि वह है ही नहीं।

मैंने सुना है, एक महल के पास पत्थरों का एक छोटा सा ढेर लगा था, और कुछ बच्चे वहां से खेलते निकले थे, और एक बच्चे ने एक पत्थर को उठा कर महल की तरफ फेंका। पत्थर ऊपर उठने लगा। पत्थरों के पास पंख नहीं होते हैं, लेकिन उड़ने की इच्छा उनमें भी होती है। आदमी के पास पंख नहीं होते, आदमी की इच्छा भी उड़ने की होती है। पत्थरों की इच्छा भी उड़ने की होती है, आकाश छूने की होती है। लेकिन पत्थर नीचे पड़े रहते हैं, उड़ नहीं पाते। और जब एक पत्थर ऊपर उड़ने लगा, तो उसने नीचे पड़े हुए पत्थरों को तिरस्कार से देखा और कहा, मैं आकाश की यात्रा को जा रहा हूं। नीचे के पत्थर विरोध भी नहीं कर सकते थे, इनकार भी नहीं कर सकते थे। यह बात सच थी वह पत्थर जा रहा था। लेकिन एक छोटा सा फर्क उस पत्थर ने कर दिया था। वह फेंका गया था। लेकिन उसने कहा, मैं जा रहा हूं। उसने यह नहीं कहा कि मैं फेंका गया हूं, उसने कहा, मैं जा रहा हूं। और आत्मा और अहंकार का फासला शुरू हो गया। अगर वह कहता कि फेंका गया हूं, तो शायद वह आत्म-बोध को उपलब्ध हो जाता। लेकिन उसने कहा, मैं जा रहा हूं। और वह अहंकार को इकट्ठा करना शुरू कर दिया। जहां उसका कोई कृत्य न था वहां उसने कहा कि मैं जा रहा हूं। नीचे के पत्थर इनकार भी नहीं कर सकते थे।

वह पत्थर ऊपर उठा और जाकर महल के कांच से टकराया, कांच चकनाचूर हो गया। अब यह स्वाभाविक ही है कि पत्थर कांच से टकराए तो कांच चकनाचूर हो जाए। इसमें पत्थर कांच को चकनाचूर करता नहीं है, कांच चकनाचूर हो जाता है, इट जस्ट हैपंस। इसमें कोई पत्थर कांच को तोड़ नहीं देता, कांच और पत्थर टकराते हैं तो कांच टूट जाता है। लेकिन पत्थर ने कहा कि पागल कांच, तू अखबार नहीं पढ़ता है, तू रेडियो नहीं सुनता है, मैंने कितनी बार यह खबर नहीं की है कि मेरे रास्ते में कोई भी न आए, नहीं तो मैं चकनाचूर कर दूंगा। अब पछताओ अपने भाग्य पर। चकनाचूर हो गए हो। पत्थर के रास्ते में जो भी आएगा चकनाचूर हो जाएगा। और याद रखो, मैं कोई साधारण पत्थर नहीं हूं, मैं आकाश में उड़ने वाला पत्थर हूं। कांच के टुकड़े क्या कह सकते थे? बात सच ही थी, वे चकनाचूर हो गए थे। लेकिन पत्थर झूठ बोल रहा था। उसने कांच को चकनाचूर किया नहीं था, कांच चकनाचूर सिर्फ हो गया था। लेकिन कौन उसे इनकार करे, और कौन उसका विरोध करे। और अहंकार की अंधी आंखें किसी का इनकार सुनती हैं, किसी का विरोध सुनती हैं? अहंकार की अंधी आंखों को जब विरोध मिलता है, तो अहंकार और सख्त और घनीभूत और कंडेंस्ड हो जाता है, और मजबूत हो जाता है विरोध के लिए, और तैयार हो जाता है।

पत्थर जाकर महल के बिछे हुए ईरानी कालीन पर गिरा। उसने ठंडी श्वास ली राहत की और उसने कहा कि बड़े भले लोग हैं इस मकान के, मालूम होता है बहुत सुशिक्षित, सुसंस्कृत, ज्ञात होता है मेरे आने की खबर पहले ही पहुंच गई, उन्होंने कालीन वगैरह बिछा रखे हैं। फिर हो भी क्यों न स्वागत, मैं कोई साधारण पत्थर नहीं हूं, मैं आकाश में उड़ने वाला पत्थर हूं। महल के मालिकों को सपने में भी पता न होगा कि किसी पत्थर का आयोजन कर रहे हैं वे, ये कालीन किसी आने वाले पत्थर के लिए बिछाए गए हैं, इसकी उनको कोई खबर न थी, पत्थर भी उस महल में अतिथि बनेगा, इसका उन्हें कोई पता नहीं था। वैसे अतिथि का मतलब ही यही होता है जिसके आने की कोई खबर न हो, जिसकी तिथि की कोई खबर न

हो। लेकिन पत्थर ने मन में सोचा कि मैं आया हूं मेरे स्वागत के लिए सब इंतजाम किया गया है। वह फूल कर दुगुना हो गया।

झोपड़े से आदमी महल में जाता है तो दुगुना हो जाता है। गांव से आदमी दिल्ली पहुंच जाता है तो दुगुना हो जाता है। वह पत्थर भी दुगुना हो गया तो कोई आश्चर्य नहीं है।

फिर महल के पहरेदार ने खबर सुनी होगी पत्थर के आने की और कांच के फूट जाने की, वह भागा हुआ आया और उसने पत्थर को उठाया फेंकने के लिए, लेकिन पत्थर ने अपने ही मन में कहा, धन्यवाद! बहुत धन्यवाद! मालूम होता है महल का मालिक हाथ में लेकर सम्मान दे रहा है। और पत्थर को वापस फेंक दिया गया। लौटते हुए पत्थर ने कहा कि होंगे तुम्हारे महल कितने ही अच्छे, लेकिन मुझे मेरे मित्रों की और घर की बहुत याद आती है, होम सिकनेस मालूम होती है। मैं वापस जा रहा हूं।

दिल्ली से कोई भी लौटता है तो यही कहते हुए लौटता है, होम सिकनेस मालूम हो रही है। तो वापस जा रहा हूं। वह पत्थर भी ऐसा कहता हुआ वापस लौटा। वह नीचे जब अपने पत्थरों में गिरने लगा तो पत्थर टकटकी लगाए उसे देख रहे थे, उसने आते ही कहा कि मित्रो, मैंने दूर-दूर की यात्राएं की, बड़े महलों में मेहमान हुआ। लेकिन महल होंगे कितने ही अच्छे, परदेस परदेस है। देश देश है, मातृभूमि की बात ही कुछ और है। मन में तुम्हारी याद आती थी। सोता था महलों में, सपने तुम्हारे देखता था। वापस लौट आया हूं।

इस पत्थर पर हमें हंसी आ सकती है। लेकिन जिस आदमी को पत्थर पर हंसी आती है उस आदमी को अगर अपने स्वयं के अहंकार पर भी हंसी आ जाए, तो उसकी जिंदगी में आत्म-बोध की पहली किरण का जन्म हो जाता है।

क्या हमारे जीवन की कथा भी इस पत्थर की यात्रा से बहुत भिन्न है? कहते हैं, मेरा जन्म! जैसे कि जन्म के पहले मुझसे पूछा गया हो कि आपके इरादे क्या हैं? आप कहां पैदा होना चाहते हैं? होना चाहते हैं कि नहीं होना चाहते हैं? जैसे जन्म मेरी च्वाइस हो, जैसे जन्म मेरा निर्णय और चुनाव हो। कहता हूं, मेरा जन्म! मेरा जन्म-दिन! जन्म के बाद मेरा मैं पैदा होता है तो कोई जन्म मेरा जन्म-दिन नहीं हो सकता। जन्म के बाद मेरा मैं सघन होता है, मेरा मैं जन्म के बाद है जन्म के पहले नहीं, तो कोई जन्म-दिन मेरा जन्म-दिन नहीं हो सकता। जन्म-दिन मुझसे पहले है, मैं पीछे हूं। और मुझसे कभी पूछा नहीं किसी ने कि जन्म लेना चाहते हैं कि नहीं लेना चाहते हैं? वह मेरा निर्णय नहीं, वह मेरा चुनाव नहीं। तो जो मेरा निर्णय नहीं, मेरा चुनाव नहीं वह मेरा कैसे हो सकता है? वह मेरा कृत्य नहीं, वह मेरा एक्ट नहीं। मैं फेंका गया हूं, किन्हीं अज्ञात हाथों ने उठा कर फेंक दिया है पत्थर को और पत्थर कह रहा है कि मैं जा रहा हूं। कोई अज्ञात हाथ फेंकते हैं मनुष्य को जीवन में और मनुष्य कहता है मेरा जन्म! और भूल शुरु हो जाती है, गलत यात्रा शुरु हो जाती है, पागलपन का रास्ता पकड़ लिया जाता है।

फिर हम कहते हैं: मेरा बचपन! मेरी जवानी! बीज को बो देते हैं हम जमीन में तो अंकुर निकल आता है। बीज अंकुर होता नहीं, अंकुर निकलता है। बीज का कोई भी कृत्य नहीं है। यह इतना ही सहज है जैसे पानी बहता है और नीचे की तरफ बह जाता है। नदियां सागर जाती नहीं, पहुंच जाती हैं; यह उतना ही सहज है कि नदियां सागर पहुंच जाती हैं। शायद नदियां सागर में जाकर कहती हों कि हम आ रहे हैं, हम यात्रा करके आ रहे हैं। नदियां सागर में पहुंचती हैं सहज। बीज में अंकुर निकलता है सहज, बच्चा जवान हो जाता है सहज। कोई जवानी लाई नहीं जाती है और न कोई जवान होता है। होना नहीं है वहां कुछ, चीजें घट रही हैं।

लेकिन हमारा मैं जोड़ता चला जाता है कि मैं, मेरा बचपन, मेरी जवानी। दूर हैं ये बातें; तो हम तो यह भी कहते हैं कि मैं श्वास लेता हूं। अगर कोई आदमी श्वास लेता होता, तो मौत असंभव थी; मौत आ जाती है और वह श्वास लिए ही चला जाता है। हम भलीभांति जानते हैं श्वास आती है, जाती है, हम लेते नहीं हैं। मैं श्वास लेता हूं, यह झूठी बात है; श्वास आती है, जाती है, मेरा कोई भी कृत्य नहीं है लेने और न लेने में। एक दिन नहीं आएगी फिर मैं नहीं ले सकूंगा। नहीं आएगी तो ले

सकने का सवाल नहीं है। नहीं आएगी तो फिर मुझे पता ही नहीं चलेगा कि मैं हूं। उसके न आने के साथ ही मैं भी न हो जाऊंगा। लेकिन कहते हम यही हैं कि मैं श्वास ले रहा हूं। और ऐसे अहंकार को हम घनीभूत करते हैं, अहं-बोध को घनीभूत करते हैं। फिर और वस्त्र जुटाते हैं उसके लिए नामों के, पदों के, प्रतिष्ठाओं के। बड़ी से बड़ी कुर्सियों की यात्रा करते हैं। और सारे जीवन की दौड़ के बाद कहीं भी नहीं पहुंच पाते सिवाए इसके कि एक फ्रस्ट्रेशन, एक चिंता, एक विषाद, एक विफलता चित्त को घेर लेती है। क्योंकि जो हम भवन बनाते हैं, वह झूठा था। मौत उस सारे भवन के असत्य को खोल देती है और ज्ञात होता है हमने जीवन के भवन में प्रवेश ही नहीं किया। हम जिस भवन को बनाते रहे वह ताश के पत्तों का घर था।

जीवन का भवन आत्म-बोध से उपलब्ध होता है, अहं-बोध से नहीं। और अहं-बोध को ही हम आत्म-बोध समझ लेते हैं तो भूल में पड़ जाते हैं। और यह भूल अंततः विफलता और विषाद के अतिरिक्त कुछ भी नहीं ला सकती। मनुष्य रोज-रोज चिंतातुर होता चला जाता है, मनुष्य रोज-रोज जीवन की व्यर्थता से भरता चला जाता है। मनुष्य जितना सुशिक्षित जितना सुसंस्कृत, जितना सभ्य होता चला जाता है उतना ही उसका जीवन व्यर्थ, उतना ही उसका जीवन दुख और पीड़ा होता जाता है।

क्या कारण हो गया है? शायद हमारी सारी सभ्यता, सारी शिक्षा, सारी संस्कृति हमारे अहंकार को और मजबूत कर रही है। शायद हमारी संस्कृति और शिक्षा के सारे पंख हमारे अहंकार के पत्थर को ही लग रहे हैं। शायद इसीलिए सब अर्थहीन होता चला जाता है। अर्थवत्ता उपलब्ध होती है उसे जानने से जो मैं हूं और अर्थहीनता उपलब्ध होती है उसे निर्मित कर लेने से जो मैं नहीं हूं। लेकिन हम उसी को निर्मित कर लेते हैं जो मैं नहीं हूं। यह यात्रा हम कैसे पूरी करते हैं। अहंकार को बढ़ाना हो तो आत्मा को विस्मरण करना होता है। जितनी सेल्फ-फॉरगेटफुलनेस हो, जितना आत्म-विस्मरण हो, उतना अहंकार मजबूत होता है। इसलिए सब तरह के नशे आदमी को अहंकार को बढ़ाने में सहयोगी होते हैं और आत्म-बोध को नष्ट करते हैं। वे नशे किसी भी तरह के हों: कोई आदमी शराब पी लेता हो, कोई आदमी संगीत में डूब कर अपने को भूल जाता हो, कोई आदमी पद की दौड़ में बेहोश और मूच्छित हो जाता हो, कोई आदमी धन को इकट्ठा करने में पागल हो जाता हो या कोई आदमी और किसी तरह की दौड़ को पकड़ लेता हो और दौड़ में अपने को डुबा लेता हो। सब तरह का आत्म-विस्मरण मनुष्य की अस्मिता को, अहंकार को मजबूत करता है। क्योंकि जितना हम भूलते हैं उसे जो हम हैं उतनी ही आसानी से उसका निर्माण शुरू हो जाता है जो हम नहीं हैं। अगर हमें याद बनी रहे थोड़ी सी भी उसकी जो हम हैं, तो हमारे हाथ ढीले हो जाएंगे उसको बनाने में जो हम नहीं हैं। प्रतिपल हमें दिखाई पड़ने लगेगा कि हम एक सपना बना रहे हैं, हम ताश का घर बना रहे हैं, हम रेत पर हस्ताक्षर कर रहे हैं। लेकिन अगर हम भूल जाएं बिल्कुल पूरी तरह से हमारे होने को, हमारी बीइंग को, तो फिर यह यात्रा बहुत आसान हो जाती है, यह सृजन बहुत आसान हो जाता है।

मनुष्य जितना सभ्य होता है उतना ही मूच्छा के उपाय खोजता है। मनुष्य की सभ्यता का विकास शायद मादकता को गहरा करने का विकास है। मनुष्य की सभ्यता ने क्या किया है? उसे नये मनोरंजन दिए हैं, नये ड्रग्स दिए हैं, एल एस डी दिया है, मेस्कलीन दिया है, मारिजुआना दिया है। सोमरस से लेकर मारिजुआना तक आदमी की सभ्यता की यात्रा आत्म-विस्मरण की यात्रा है। और आदमी पागल होता चला जा रहा है। और पागल आदमी नशा चाहता है, और नशे में जो जाता है वह और पागल होता है, वह और पागल होता है, वह और नशा चाहता है। अपने को भूल जाना चाहता है, डुबा देना चाहता है। फिर वह हजार तरकीबें खोजता है अपने को भुला देने और डुबा देने की। और इन्हीं सबको वह संस्कृति कहता है।

ठीक इससे उलटी दिशा है आत्म-बोध की; जिसे आत्म-बोध की दिशा में जाना हो उसे अहंकार को विस्मरण करना होगा। और जिसे अहंकार की दिशा में जाना हो उसे स्वयं को विस्मरण करना होगा। अहंकार की दिशा में जाना हो तो मूच्छा बहुत सहयोगी है, नशा बहुत सहयोगी है, मादकता बहुत सहयोगी है। भूल जाना बहुत सहयोगी है। कैसे हम भूलते हैं यह बात दूसरी है। भजन-कीर्तन करके भूलते हैं, कि गांजा-अफीम से भूलते हैं, कि संगीत से भूलते हैं, यह बात दूसरी है।

वाजिद अली के समय में एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ लखनऊ में आया, वह एक बहुत बड़ा वीणावादक था। और उस वीणावादक ने कहा कि मैं एक ही शर्त पर बजाऊंगा वीणा। कि जब मैं बजाऊं तो कोई सिर हिलना नहीं चाहिए। अब कलाकारों के अपने पागलपन होते हैं। और वाजिद अली तो पक्का पागल था। नवाबों के अपने पागलपन होते हैं। वाजिद अली ने कहा कि तुम घबड़ाओ मत, सिर हिलने की बात कहते हो! अगर कोई सिर हिला तो सिर अलग ही करवा देंगे। गांव में डुंडी पीट दी गई और खबर कर दी गई कि कोई सुनने आए तो समझ-सोच कर आए, सिर नहीं हिलाना है। और अगर सिर हिलेगा तो सिर कटवा दिया जाएगा। फिर जिम्मा नहीं है।

हजारों लोग सुनने आते उस संगीतज्ञ को, लेकिन मुश्किल से पचास-साठ आदमी सुनने आए। जो बहुत संयमी होंगे, वही आए होंगे। जो योगासन लगा कर बैठ सकते होंगे, वही आए होंगे। फिर संगीत शुरु हुआ, उसकी वीणा बजनी शुरु हुई। आधी रात तक लोग पत्थर की मूर्तियों की तरह बैठे रहे, जैसे कि उनमें प्राण भी न हों। श्वास भी लेने में डरे होंगे कि कहीं भूल से भी सिर हिल जाए, तो वह वाजिद अली तो पागल था, वह सिर कटवा ही देगा। नंगी तलवारें लिए हुए सैनिक उसने खड़े कर रखे थे कि कोई भाग न जाए सिर हिला कर।

आधी रात के बाद लेकिन कुछ सिर हिलने शुरु हो गए। एक हिला, दो हिले और तीन हिले और धीरे-धीरे उस पचास-साठ की भीड़ में आधे सिर हिलने लगे। वाजिद अली बहुत हैरान हुआ कि ये पागल हो गए हैं, इनको भूल गई ख्याल! सुबह जब वीणा बंद हुई, तीस आदमी पकड़ लिए गए। और वाजिद अली ने कहा: पागलो, तुम भूल गए कि सिर कट जाएंगे? उन्होंने कहा: जब तक हम थे तब तक नहीं भूले थे। लेकिन जब हम ही न रहे तो भूलने न भूलने का कोई सवाल न रहा। जब तक हम थे हमने सिर नहीं हिलाए, लेकिन जब हम ही न रहे तो सिर हिल गए होंगे उसका हमें कोई पता नहीं, उसका हमारा कोई जिम्मा नहीं। उसका हमारा कोई उत्तरदायित्व नहीं।

वाजिद अली ने उस संगीतज्ञ को कहा: इनके सिर कटवा दें? उस संगीतज्ञ ने कहा कि नहीं, बस कल इन तीस को बुला लें, इन तीस के सामने वीणा बजाऊंगा। क्योंकि ये ही ठीक सुनने वाले हैं।

क्या संगीत इतनी मूर्च्छा में ले जा सकता है कि प्राणों का भय भी विलीन हो जाए? ले जा सकता है। क्या पद का मोह इतने पागलपन में ले जा सकता है कि प्राण का मोह विलीन हो जाए? ले जा सकता है। क्या धन-संग्रह की मादकता इतनी तीव्र हो सकती है कि आदमी अपने प्राणों को गंवा दे? हो सकती है। और जितनी दिशाओं में आदमी दौड़ता है, वे वे ही दिशाएं हैं जहां वह किसी भांति स्वयं को भूल जाए। जितनी देर को वह स्वयं को भूले रहता है उतनी देर ही उसे लगता है कि कोई सुख मिल रहा है। जैसे ही उसे ख्याल आता है अपना, थोड़ी सी भी झलक आती है अपनी, सारा झूठ का महल उसे दिखाई पड़ता है कि मैं कहां खड़ा हूं। वैसे ही प्राण घबड़ाने लगते हैं, वैसे ही एंग्विश, संताप शुरु हो जाता है। फिर वह कोशिश करता है अपने को भूल जाऊं। अधार्मिक आदमी उसे मैं कहता हूं, उसे नहीं जो मस्जिद नहीं जाता, मंदिर नहीं जाता। उसे नहीं जो गीता नहीं पढ़ता, रामायण नहीं पढ़ता। उसे नहीं जो तिलक नहीं लगाता। अधार्मिक आदमी उसे कहता हूं, जो निरंतर अपने को भूलने की कोशिश करता रहता है। और धार्मिक आदमी उसे कहता हूं, चाहे कितनी ही तपश्चर्यापूर्ण हो यह बात, कितनी ही आरडुअस, कितनी ही कठिन प्रतीत होती हो लेकिन अपने को जानने की, होश से भरने की, सेल्फ-रिमेंबरिंग की, आत्म-स्मृति की कोशिश करता रहता है, वह आदमी धार्मिक है।

और धार्मिक होने के लिए उसे अधार्मिक से विपरीत दिशा में चलना होता है। अधार्मिक भूलता है आत्म को, धार्मिक भूलना शुरु करता है अहंकार को। और धार्मिक को अहंकार को भूलने की जरूरत नहीं है, वह केवल अहंकार को समझ ले और अहंकार विलीन हो जाता है। आत्मा को भूलना पड़ता है, क्योंकि आत्मा है। अहंकार को भूलना नहीं पड़ता, वह है ही नहीं; केवल देखना पड़ता है और वह विसर्जित हो जाता है। केवल आंखें गहरी करनी पड़ती हैं, खोज करनी पड़ती है कि कहां है मेरा अहंकार? मैं क्या कर रहा हूं, मैं अपने को भूलने की कोशिश तो नहीं कर रहा हूं? क्योंकि मैं कितना ही अपने को भूलूं, फिर भी मैं वही रहूंगा जो मैं हूं। मैं लाखों वर्ष कोशिश करूं अपने भूलने की, तो भी मैं वही रहूंगा जो मैं हूं। स्वयं से

बचने का कोई भी उपाय नहीं है। हम सबसे बच सकते हैं, लेकिन स्वयं से नहीं बच सकते हैं। आज नहीं कल, वह स्वयं की सत्ता का साक्षात करना ही होगा। क्योंकि जो मैं हूं उससे मैं कैसे बच सकता हूं? मैं जहां भी भाग जाऊं, जहां भी छिप जाऊं मैं हमेशा अपने साथ मौजूद हो जाऊंगा। मैं नशे में डूब जाऊं तो भी मैं मौजूद रहूंगा। नशा टूटेगा और मैं वापस अपनी जगह खड़ा हो जाऊंगा।

स्वयं से बचने का कोई उपाय नहीं है। मैं कहता हूं: परमात्मा से बचने का कोई उपाय नहीं है। आदमी सबसे बच सकता है लेकिन परमात्मा से नहीं बच सकता। क्योंकि वह उसका होना है, वह उसकी स्वयं की सत्ता है। आज नहीं कल उसे उसके सामने खड़ा हो ही जाना है। वह भागे और भागे और ओर-छोर नाप डाले जगत के, वह भाग कर जाएगा कहां? वह अपने से तो नहीं भाग सकता, वह अपने होने से तो नहीं भाग सकता, उसके सामने खड़ा ही हो जाना पड़ेगा। तो जो बात होनी ही है, धार्मिक आदमी उसके लिए आज ही करने का साहस कर लेता है। धर्म एक दुस्साहस है आत्म-साक्षात्कार का। और वह कैसे आत्म-साक्षात्कार हो सकता है? हो सकता है कि अहंकार को वह देखे और अहंकार विसर्जित हो जाए। तो अहंकार के हटते ही, अहंकार के गिरते ही उसकी ज्योति आनी शुरू हो जाती है जो हम हैं। जैसे ही अहंकार का पर्दा हटता है उसकी रोशनी मिलनी शुरू हो जाती है जो मेरा वास्तविक होना है।

आत्म-बोध की दिशा अहंकार विसर्जन की साधना के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। केवल वे ही लोग स्वयं को जान पाते हैं जो स्वयं के होने के झूठे और कल्पित भवन को गिरा देते हैं। सपना खोना पड़ता है सत्य को पाने के लिए और कुछ भी नहीं खोना पड़ता है। सत्य को पाने के लिए सपनों के अतिरिक्त और कोई चीज नहीं त्यागनी पड़ती है। सपने ही लेकिन बहुत गहरे हैं और बहुत जोर से पकड़े हुए हैं। रात ही हम सपने देखते होते तो क्षम्य था, हम चैबीस घंटे और जन्म से मरने तक सपने देखते हैं। और सारे सपनों का केंद्र हमारा ईगो, हमारा अहंकार है। जब तक अहंकार न टूट जाए तब तक ड्रीमिंग माइंड भी, सपने देखने वाला मन भी समाप्त नहीं होता है। और जैसे ही अहंकार टूट जाता है वैसे ही स्वप्न विलीन हो जाते हैं और जो शेष रह जाता है वही सत्य है। आत्म-बोध के लिए कुछ करना नहीं है, कुछ हम कर रहे हैं उसे भर न करें, तो आत्म-बोध सहज ही उपलब्ध हो जाता है, वह हमारा होना है, उसे कहीं से लाना नहीं है।

एक आदमी एक रात शराब पी लिया और अपने घर पहुंच गया। शराब पी ली आदत के कारण। अपने घर तो पहुंच गया, लेकिन उसे पहचान नहीं पड़ता था कि यह उसका घर है या नहीं। वह जोर से दरवाजे पीटने लगा। और पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गए और उससे पूछने लगे कि क्या बात है? वह आदमी कहने लगा कि मैं अपना घर भूल गया हूं, मुझे मेरे घर पहुंचा दें। वे े सारे पड़ोसी हंसने लगे, उन्होंने कहा, पागल, तू अपने घर के सामने खड़ा है। लेकिन वह आदमी सुनने की स्थिति में नहीं था, वह छाती पीटने लगा और कहने लगा कि रात ज्यादा हुई जा रही है, मुझे कोई मेरे घर पहुंचा दो। तुम हंसते हो, तुम इतनी भी दया नहीं करते कि मुझे मेरे घर पहुंचा दो।

उसके रोने और चिल्लाने को, पड़ोसियों के समझाने को सुन कर उसकी मां बाहर निकल आई। उसने अपनी मां को देखा, वह उसके पैर पकड़ लिया और कहने लगा कि माई, मुझे मेरे घर पहुंचा दे, मेरी मां मेरा रास्ता देख रही होगी। उसकी मां कहने लगी, पागल, तुझे हो क्या गया है? तू अपने घर खड़ा है और अपनी मां के सामने। लेकिन वह कहने लगा, मुझे समझाने की फिजूल कोशिश मत करो। और रात देर हुई जाती है, मेरी मां रास्ता देखती होगी और घर मुझे जल्दी पहुंच जाना है।

एक आदमी पड़ोस का बहुत दयालु होगा, वह जोत कर अपनी बैलगाड़ी ले आया और उसने कहा, चल बैठ, मैं तुझे तेरे घर पहुंचाता हूं। उसकी मां कहने लगी कि पागल, यह तो पागल है और तू भी पागल है। बैलगाड़ी में बिठा कर कहीं भी ले जाएगा तो घर से और दूर निकल जाएगा, क्योंकि घर तो यह मौजूद है। इसे बैलगाड़ी में बिठा कर कहीं नहीं ले जाना है, इसे केवल होश दिलाना है। इसकी बेहोशी टूट जाए तो इसे पता चल जाएगा कि यह जहां है वहीं इसका घर है।

मनुष्य को आत्म-बोध नहीं है। एक आदमी कहता है कि आओ, मैं तुम्हें तंत्र-मंत्र की बैलगाड़ी में बिठाता हूं और आत्मा तक पहुंचा दूंगा। एक आदमी कहता है कि आओ, मैं तुम्हें शास्त्र की रेलगाड़ी में बिठा देता हूं और तुम्हें तुम्हारे घर पहुंचा दूंगा। एक आदमी कहता है कि मुझे गुरु बना लो, मेरे चरणों को पकड़ो और मैं तुम्हें तैरा दूंगा, तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं है, मैं तुम्हें पहुंचा दूंगा। पच्चीस दुकानदार हैं, जो कहते हैं कि आदमी को किस भांति आत्म-बोध करा देंगे। लेकिन आत्म-बोध कोई ऐसी चीज नहीं है कि जहां हमें जाना है। आत्म-बोध तो वहीं उपलब्ध होना है जहां हम हैं। जो मैं हूं उसके लिए कोई यात्रा नहीं करनी है। फिर क्या करना है? हम कोई यात्रा कर रहे हैं, सपने में वह यात्रा तोड़ देनी है।

एक आदमी रात सोया है और सपना देख रहा है कि कलकत्ते में है, रंगून में है या टोक्यो में है। वह पड़ा है बंबई में और सपना देख रहा है कि टोक्यो में है और रंगून में है। क्या उसको जगा कर हमें वापस बंबई लाना पड़ेगा रंगून से? क्या जगा कर कहना पड़ेगा कि अब चलो रंगून से वापस बंबई चलें। वह जागते ही बंबई में होगा। क्योंकि वह रंगून में कभी गया नहीं था। वह बंबई में था सिर्फ सपना देखता था रंगून में होने का। इसलिए हिला देना काफी है, जगा देना काफी है। कहीं किसी को ले जाना नहीं है। आत्मा की या परमात्मा की यात्रा कोई दूर की यात्रा नहीं है, वहां किसी को जाना नहीं है, वहां हम हैं। जहां हम हैं, हमारे उस होने का नाम ही हमारी आत्मा है। जहां हम हैं, हमारे उस होने का नाम ही परमात्मा है। जहां हम हैं, वही हमारा घर है। लेकिन जागना है। और अहंकार में जो सोया है वह कैसे जाग सकता है। इसलिए एक ही अंतिम बात आपसे कहनी है, वह यह कि आत्म-बोध की फिकर छोड़ दें। फिकर करें अहंकार-बोध की कि इस अहंकार को ठीक से जानें, समझें, पहचानें, और अगर यह दिखाई पड़ने लगे कि झूठा है, सपना है, तो यह मिट जाएगा। यह यात्रा टूट जाएगी। यह भवन गिर जाएगा। और तब जो शेष रह जाएगा, तब जो स्मृति जाग उठेगी, तब जो बोध जन्म जाएगा, तब जो प्रकाश भर जाएगा प्राणों में, जो आलोक पकड़ लेगा, वही आत्मबोध है। आत्मबोध तो स्वभाव है। लेकिन अहंकार की यात्रा के कारण वह छिपा है, और छिपा रहेगा। अहंकार जिनका टूट जाता है वे धन्यभागी हैं, वे आत्मबोध को उपलब्ध हो जाते हैं।

एक ही बात दोहरा कर अपनी बात पूरी करता हूं: अहंकार को खोजें। अहंकार को खोजें, कहां है? नाम में है, पद में है, धन में है, ज्ञान में है, त्याग में है, कहां है? उसे खोजें और जहां-जहां खोजेंगे पाएंगे कि वहीं से वह हवा हो गया, भाग गया। जब पूरे चित्त को खोज लेंगे अपने और उसे कहीं भी नहीं पाएंगे; तब जो मिल जाएगा वह आत्मा है।

एक भिक्षु भारत से कोई चैदह सौ वर्ष पहले चीन गया, बोधिधर्म। वहां का सम्राट वू उसके स्वागत को आया राज्य की सीमा पर। और स्वागत करने के बाद उसने बोधिधर्म को कहा कि मैं अहंकार से बहुत पीड़ित हूं और सभी संन्यासी कहते हैं अहंकार छोड़ो, अहंकार छोड़ो। मैंने बहुत कोशिश कर ली छोड़ने की, लेकिन अहंकार नहीं छूटता, अब मैं क्या करूं? मेरी मौत करीब आ रही है, क्या मेरे छुटकारे का कोई उपाय नहीं है? उस बोधिधर्म ने कहा: कि तू सुबह चार बजे आ जाना, अंधेरे में, अकेले में, मैं तेरे अहंकार को छुड़ा दूंगा। अब तू जा। वह सम्राट बहुत हैरान हुआ। वह बहुत संन्यासियों के पास गया था, बहुत भिक्षुओं के पास गया था। लोग समझाते थे, लेकिन कोई यह नहीं कहता था कि मैं छुड़ा दूंगा। यह आदमी कैसा है! लेकिन शायद छुड़ा दे। वह सीढ़ियां मंदिर की उतरने लगा, तभी बोधिधर्म ने चिल्ला कर कहा कि सुन, अकेला मत आ जाना, अहंकार को साथ ले आना, नहीं तो मैं छुड़ाऊंगा कैसे?

सम्राट वू को लगा कि यह आदमी पागल है। आने की कोई जरूरत नहीं है; क्योंकि मैं आऊंगा तो मेरा अहंकार तो आ ही जाएगा। यह क्या कहने की जरूरत थी कि अहंकार को साथ ले आना? लेकिन सोचा कि क्या हर्ज है, चल कर देख लेना चाहिए, पता नहीं कुछ आदमी करे, कुछ जानता हो।

वह चार बजे रात डरता-डरता आया, अंधेरी रात, वह आकर बोधिधर्म के झोपड़े के बाहर बैठा। बोधिधर्म लालटेन और डंडा लेकर बाहर आया और उसने कहा: आ गए तुम? लेकिन अकेले दिखाई पड़ते हो, अहंकार कहां है? उस वू ने कहा कि आप भी पागलों जैसी बातें करते हैं। अहंकार तो मेरे भीतर है, उसे मैं छोड़ कर कैसे आ सकता हूं? वह तो साथ है ही।

अगर उसको मैं छोड़ सकता, तो तुमसे छोड़ने का उपाय क्यों पूछता? मैं उसे नहीं छोड़ पा रहा हूं, यही तो मेरी समस्या है। तुम कोई रास्ता बता दो, मैं उसे कैसे छोड़ूं?

बोधिधर्म ने कहा: तू कहता है, भीतर है, पक्का तुझे विश्वास है कि भीतर है? तो आंख बंद करके भीतर खोज। मैं सामने बैठा हूं, मिल जाए तो वहीं पकड़ लेना और मुझे कहना, तो मैं उसको खत्म कर दूंगा।

अब वह बोधिधर्म सामने बैठ गया और वह सम्राट वू आंख बंद करके भीतर खोजने लगा। ...और वह बोधिधर्म उसे हिलाने लगा कि सो मत जाना, खोज जारी रख और भीतर खोज ले। और जब भी तू पा ले कि पकड़ लिया, उसी वक्त मैं खतम कर दूंगा।

आधा घड़ी बीत गई, एक घंटा बीत गया, डेढ़ घंटा बीत गया, सुबह होने लगी, सूरज निकलने लगा। उस सम्राट वू के आंख पर, चेहरे पर एक अदभुत शांति आने लगी। उसके चेहरे के सारे तनाव विलीन होने लगे। एक आनंद की छाया उतरने लगी। फिर सूरज निकल आया, फिर उसकी रोशनी में वह सम्राट वू बैठा है आनंद से भरा हुआ। उस बोधिधर्म ने उसे कहा कि बोल। उसने आंख खोली और बोधिधर्म के पैर पड़े और कहा: मैं जाता हूं, क्योंकि जो नहीं है उसे मिटाना भी पागलपन है। मैंने उसे देखा ही नहीं, इसलिए सोचता था कि वह है। आज भीतर खोजा, तो पाता हूं, वह तो कहीं भी नहीं है। वू पैर पड़ कर चला गया था।

खोजें अहंकार को, जीवन में वह कहां-कहां खड़ा कर लिया है? कहां-कहां है? और जिस दिन दिखाई पड़ जाएगा कि वह नहीं है, उसी दिन, उसी दिन वह दिखाई पड़ना शुरु हो जाएगा जो है। और उसकी उपलब्धि बन जाती है आनंद, उसकी उपलब्धि बन जाती है आलोक, उसकी उपलब्धि बन जाती है अमृत। शेष सारे लोग जीते हैं, दिखाई पड़ते हैं जीते हुए, लेकिन जीवन को नहीं जानते। केवल वे ही लोग जीवन को जान पाते हैं जो स्वयं की परिपूर्ण गहराई को उपलब्ध होते हैं, जो आत्म-बोध को उपलब्ध होते हैं, वे ही केवल अमृत-जीवन को भी जाने पाते हैं।

मेरी ये थोड़ी सी बातें इतने प्रेम और इतनी शांति से सुनीं, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

परमात्मा की प्यास और संकल्प

ध्यान सूत्र-1

मेरे प्रिय आत्मन् ,

सबसे पहले तो आपका स्वागत करूं--इसलिए कि परमात्मा में आपकी उत्सुकता है--इसलिए कि सामान्य जीवन के ऊपर एक साधक के जीवन में प्रवेश करने की आकांक्षा है--इसलिए कि संसार के अतिरिक्त सत्य को पाने की प्यास है।

सौभाग्य है उन लोगों का, जो सत्य के लिए प्यासे हो सकें। बहुत लोग पैदा होते हैं, बहुत कम लोग सत्य के लिए प्यासे हो पाते हैं। सत्य का मिलना तो बहुत बड़ा सौभाग्य है। सत्य की प्यास होना भी उतना ही बड़ा सौभाग्य है। सत्य न भी मिले, तो कोई हर्ज नहीं; लेकिन सत्य की प्यास ही पैदा न हो, तो बहुत बड़ा हर्ज है।

सत्य यदि न मिले, तो मैंने कहा, कोई हर्ज नहीं है। हमने चाहा था और हमने प्रयास किया था, हम श्रम किए थे और हमने आकांक्षा की थी, हमने संकल्प बांधा था और हमने जो हमसे बन सकता था, वह किया था। और यदि सत्य न मिले, तो कोई हर्ज नहीं; लेकिन सत्य की प्यास ही हममें पैदा न हो, तो जीवन बहुत दुर्भाग्य से भर जाता है।

और मैं आपको यह भी कहूं कि सत्य को पा लेना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना सत्य के लिए ठीक अर्थों में प्यासे हो जाना है। वह भी एक आनंद है। जो क्षुद्र के लिए प्यासा होता है, वह क्षुद्र को पाकर भी आनंद उपलब्ध नहीं करता। और जो विराट के लिए प्यासा होता है, वह उसे न भी पा सके, तो भी आनंद से भर जाता है।

इसे पुनः दोहराऊं--जो क्षुद्र के लिए आकांक्षा करे, वह अगर क्षुद्र को पा भी ले, तो भी उसे कोई शांति और आनंद उपलब्ध नहीं होता है। और जो विराट की अभीप्सा से भर जाए, वह अगर विराट को उपलब्ध न भी हो सके, तो भी उसका जीवन आनंद से भर जाता है। जिन अर्थों में हम श्रेष्ठ की कामना करने लगते हैं, उन्हीं अर्थों में हमारे भीतर कोई श्रेष्ठ पैदा होने लगता है।

कोई परमात्मा या कोई सत्य हमारे बाहर हमें उपलब्ध नहीं होगा, उसके बीज हमारे भीतर हैं और वे विकसित होंगे। लेकिन वे तभी विकसित होंगे जब प्यास की आग और प्यास की तपिश और प्यास की गर्मी हम पैदा कर सकें। मैं जितनी श्रेष्ठ की आकांक्षा करता हूं, उतना ही मेरे मन के भीतर छिपे हुए वे बीज, जो विराट और श्रेष्ठ बन सकते हैं, वे कंपित होने लगते हैं और उनमें अंकुर आने की संभावना पैदा हो जाती है।

जब आपके भीतर कभी यह खयाल भी पैदा हो कि परमात्मा को पाना है, जब कभी यह खयाल भी पैदा हो कि शांति को और सत्य को उपलब्ध करना है, तो इस बात को स्मरण रखना कि आपके भीतर कोई बीज अंकुर होने को उत्सुक हो गया है। इस बात को स्मरण रखना कि आपके भीतर कोई दबी हुई आकांक्षा जाग रही है। इस बात को स्मरण रखना कि कुछ महत्वपूर्ण आंदोलन आपके भीतर हो रहा है।

उस आंदोलन को हमें सम्हालना होगा। उस आंदोलन को सहारा देना होगा। क्योंकि बीज अकेला अंकुर बन जाए, इतना ही काफी नहीं है। और भी बहुत-सी सुरक्षाएं जरूरी हैं। और बीज अंकुर बन जाए, इसके लिए बीज की क्षमता काफी नहीं है, और बहुत-सी सुविधाएं भी जरूरी हैं।

जमीन पर बहुत बीज पैदा होते हैं, लेकिन बहुत कम बीज वृक्ष बन पाते हैं। उनमें क्षमता थी, वे विकसित हो सकते थे। और एक-एक बीज में फिर करोड़ों-करोड़ों बीज लग सकते थे। एक छोटे-से बीज में इतनी शक्ति है कि एक पूरा जंगल उससे पैदा हो जाए। एक छोटे-से बीज में इतनी शक्ति है कि सारी जमीन पर पौधे उससे पैदा हो जाएं। लेकिन यह भी हो सकता है कि इतनी विराट क्षमता, इतनी विराट शक्ति का वह बीज नष्ट हो जाए और उसमें कुछ भी पैदा न हो।

एक बीज की यह क्षमता है, एक मनुष्य की तो क्षमता और भी बहुत ज्यादा है। एक बीज से इतना बड़ा, विराट विकास हो सकता है, एक पत्थर के छोटे-से टुकड़े से अगर अणु को विस्फोट कर लिया जाए, तो महान ऊर्जा का जन्म होता

है, बहुत शक्ति का जन्म होता है। मनुष्य की आत्मा और मनुष्य की चेतना का जो अणु है, अगर वह विकसित हो सके, अगर उसका विस्फोट हो सके, अगर उसका विकास हो सके, तो जिस शक्ति और ऊर्जा का जन्म होता है, उसी का नाम परमात्मा है। परमात्मा को हम कहीं पाते नहीं हैं, बल्कि अपने ही विस्फोट से, अपने ही विकास से जिस ऊर्जा को हम जन्म देते हैं, जिस शक्ति को, उस शक्ति का अनुभव परमात्मा है। उसकी प्यास आपमें है, इसलिए मैं स्वागत करता हूं।

लेकिन इससे कोई यह न समझे कि आप यहां इकट्ठे हो गए हैं, तो जरूरी हो कि आप प्यासे ही हों। आप यहां इकट्ठे हो सकते हैं मात्र एक दर्शक की भांति भी। आप यहां इकट्ठे हो सकते हैं एक मात्र सामान्य जिज्ञासा की भांति भी। आप यहां इकट्ठे हो सकते हैं एक कुतूहल के कारण भी। लेकिन कुतूहल से कोई द्वार नहीं खुलते हैं। और जो ऐसे ही दर्शक की भांति खड़ा हो, उसे कोई रहस्य उपलब्ध नहीं होते हैं। इस जगत में जो भी पाया जाता है, उसके लिए बहुत कुछ चुकाना पड़ता है। इस जगत में जो भी पाया जाता है, उसके लिए बहुत कुछ चुकाना पड़ता है। कुतूहल कुछ भी नहीं चुकाता। इसलिए कुतूहल कुछ भी नहीं पा सकता है। कुतूहल से कोई साधना में प्रवेश नहीं करता। अकेली जिज्ञासा नहीं, मुमुक्षा! एक गहरी प्यास!

कल संध्या मैं किसी से कह रहा था कि अगर एक मरुस्थल में आप हों और पानी आपको न मिले, और प्यास बढ़ती चली जाए, और वह घड़ी आ जाए कि आप अब मरने को हैं और अगर पानी नहीं मिलेगा, तो आप जी नहीं सकेंगे। अगर कोई उस वक्त आपको कहे कि हम यह पानी देते हैं, लेकिन पानी देकर हम जान ले लेंगे आपकी, यानि जान के मूल्य पर हम पानी देते हैं, आप उसको भी लेने को राजी हो जाएंगे। क्योंकि मरना तो है; प्यासे मरने की बजाय, तृप्त होकर मर जाना बेहतर है।

उतनी जिज्ञासा, उतनी आकांक्षा, जब आपके भीतर पैदा होती है, तो उस जिज्ञासा और आकांक्षा के दबाव में आपके भीतर का बीज टूटता है और उसमें से अंकुर निकलता है। बीज ऐसे ही नहीं टूट जाते हैं, उनको दबाव चाहिए। उनको बहुत दबाव चाहिए, बहुत उत्ताप चाहिए, तब उनकी सख्त खोल टूटती है और उसके भीतर से कोमल पौधे का जन्म होता है। हम सबके भीतर भी बहुत सख्त खोल है। और जो भी उस खोल के बाहर आना चाहते हैं, अकेले कुतूहल से नहीं आ सकेंगे। इसलिए स्मरण रखें, जो मात्र कुतूहल से इकट्ठे हुए हैं, वे मात्र कुतूहल को लेकर वापस लौट जाएंगे। उनके लिए कुछ भी नहीं हो सकेगा। जो दर्शक की भांति इकट्ठे हुए हैं, वे दर्शक की भांति ही वापस लौट जाएंगे, उनके लिए कुछ भी नहीं हो सकेगा।

इसलिए प्रत्येक अपने भीतर पहले तो यह खयाल कर ले, उसमें प्यास है? प्रत्येक अपने भीतर यह विचार कर ले, वह प्यासा है? इसे बहुत स्पष्ट रूप से अनुभव कर ले, वह सच में परमात्मा में उत्सुक है? उसकी कोई उत्सुकता है सत्य को, शांति को, आनंद को उपलब्ध करने के लिए?

अगर नहीं है, तो वह समझे कि वह जो भी करेगा, उस करने में कोई प्राण नहीं हो सकते; वह निष्प्राण होगा। और तब फिर उस निष्प्राण चेष्टा का अगर कोई फल न हो, तो साधना जिम्मेवार नहीं होगी, आप स्वयं जिम्मेवार होंगे।

इसलिए पहली बात अपने भीतर अपनी प्यास को खोजना और उसे स्पष्ट कर लेना है। आप सच में कुछ पाना चाहते हैं? अगर पाना चाहते हैं, तो पाने का रास्ता है।

एक बार ऐसा हुआ, गौतम बुद्ध एक गांव में ठहरे थे। एक व्यक्ति ने उनको आकर कहा कि 'आप रोज कहते हैं कि हर एक व्यक्ति मोक्ष पा सकता है। लेकिन हर एक व्यक्ति मोक्ष पा क्यों नहीं लेता है?' बुद्ध ने कहा, 'मेरे मित्र, एक काम करो। संध्या को गांव में जाना और सारे लोगों से पूछकर आना, वे क्या पाना चाहते हैं। एक फेहरिस्त बनाओ। हर एक का नाम लिखो और उसके सामने लिख लाना, उनकी आकांक्षा क्या है।'

वह आदमी गांव में गया। उसने जाकर पूछा। उसने एक-एक आदमी को पूछा। थोड़े-से लोग थे उस गांव में, उन सबने उत्तर दिए। वह सांझ को वापस लौटा। उसने बुद्ध को आकर वह फेहरिस्त दी। बुद्ध ने कहा, 'इसमें कितने लोग मोक्ष के

आकांक्षी हैं?' वह बहुत हैरान हुआ। उसमें एक भी आदमी ने अपनी आकांक्षा में मोक्ष नहीं लिखाया था। बुद्ध ने कहा, 'हर एक आदमी पा सकता है, यह मैं कहता हूं। लेकिन हर एक आदमी पाना चाहता है, यह मैं नहीं कहता।'

हर एक आदमी पा सकता है, यह बहुत अलग बात है। और हर एक आदमी पाना चाहता है, यह बहुत अलग बात है। अगर आप पाना चाहते हैं, तो यह आश्वासन मानें। अगर आप सच में पाना चाहते हैं, तो इस जमीन पर कोई ताकत आपको रोकने में समर्थ नहीं है। और अगर आप नहीं पाना चाहते, तो इस जमीन पर कोई ताकत आपको देने में भी समर्थ नहीं है।

तो सबसे पहली बात, सबसे पहला सूत्र, जो स्मरण रखना है, वह यह कि आपके भीतर एक वास्तविक प्यास है? अगर है, तो आश्वासन मानें कि रास्ता मिल जाएगा। और अगर नहीं है, तो कोई रास्ता नहीं है। आपकी प्यास आपके लिए रास्ता बनेगी।

दूसरी बात, जो मैं प्रारंभिक रूप से यहां कहना चाहूं, वह यह है कि बहुत बार हम प्यासे भी होते हैं किन्हीं बातों के लिए, लेकिन हम आशा से भरे हुए नहीं होते हैं। हम प्यासे होते हैं, लेकिन आशा नहीं होती। हम प्यासे होते हैं, लेकिन निराश होते हैं। और जिसका पहला कदम निराशा में उठेगा, उसका अंतिम कदम निराशा में समाप्त होगा। इसे भी स्मरण रखें, जिसका पहला कदम निराशा में उठेगा, उसका अंतिम कदम भी निराशा में समाप्त होगा। अंतिम कदम अगर सफलता और सार्थकता में जाना है, तो पहला कदम बहुत आशा में उठना चाहिए।

तो इन तीन दिनों के लिए आपसे कहूंगा--यूं तो पूरे जीवन के लिए कहूंगा--एक बहुत आशा से भरा हुआ दृष्टिकोण। क्या आपको पता है, बहुत कुछ इस पर निर्भर करता है आपके चित्त का कि क्या आप आशा से भरकर किसी काम को कर रहे हैं या निराशा से? अगर आप पहले से निराश हैं, तो आप अपने ही हाथ से उस डगाल को काट रहे हैं, जिस पर आप बैठे हुए हैं।

तो मैं आपको यह कहूं, साधना के संबंध में बहुत आशा से भरा हुआ होना बड़ा महत्वपूर्ण है। आशा से भरे हुए होने का मतलब यह है कि अगर इस जमीन पर किसी भी मनुष्य ने सत्य को कभी पाया है, अगर इस जमीन पर मनुष्य के इतिहास में कभी भी कोई मनुष्य आनंद को और चरम शांति को उपलब्ध हुआ है, तो कोई भी कारण नहीं है कि मैं उपलब्ध क्यों नहीं हो सकूंगा।

उन लाखों लोगों की तरफ मत देखें, जिनका जीवन अंधकार से भरा हुआ है और जिन्हें कोई आशा और कोई किरण और कोई प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता। उन थोड़े-से लोगों को इतिहास में देखें, जिन्हें सत्य उपलब्ध हुआ है। उन बीजों को मत देखें, जो वृक्ष नहीं बन पाए और सड़ गए और नष्ट हो गए। उन थोड़े-से बीजों को देखें, जिन्होंने विकास को उपलब्ध किया और जो परमात्मा तक पहुंचे। और स्मरण रखें कि उन बीजों को जो संभव हो सका, वह प्रत्येक बीज को संभव है। एक मनुष्य को जो संभव हुआ है, वह प्रत्येक दूसरे मनुष्य को संभव है।

मैं आपको यह कहना चाहता हूं कि बीज रूप से आपकी शक्ति उतनी ही है जितनी बुद्ध की, महावीर की, कृष्ण की या क्राइस्ट की है। परमात्मा के जगत में इस अर्थों में कोई अन्याय नहीं है कि वहां कम और ज्यादा संभावनाएं दी गई हों। संभावनाएं सबकी बराबर हैं, लेकिन वास्तविकताएं सबकी बराबर नहीं हैं। क्योंकि हममें से बहुत लोग अपनी संभावनाओं को वास्तविकता में परिणत करने का प्रयास ही कभी नहीं करते।

तो एक आधारभूत खयाल, आशा से भरा हुआ होना है। यह विश्वास रखें कि अगर कभी भी किसी को शांति उपलब्ध हुई है, आनंद उपलब्ध हुआ है, तो मुझे भी उपलब्ध हो सकेगा। अपना अपमान न करें निराश होकर। निराशा स्वयं का सबसे बड़ा अपमान है। उसका अर्थ है कि मैं इस योग्य नहीं हूं कि मैं भी पा सकूंगा। मैं आपको कहूं, इस योग्य आप हैं, निश्चित पा सकेंगे।

देखें! निराशा में भी जीवनभर चलकर देखा है। आशा में इन तीन दिन चलकर देखें। इतनी आशा से भरकर चलें कि होगी घटना, जरूर घटना घटेगी। क्यूं! यह हो सकता है आप आशा से भरे हों, लेकिन बाहर की दुनिया में हो सकता है कोई काम आप आशा से भरे हों, तो भी न कर पाएं। लेकिन भीतर की दुनिया में आशा बहुत बड़ा रास्ता है। जब आप आशा से भरते हैं, तो आपका कण-कण आशा से भर जाता है, आपका रोआं-रोआं आशा से भर जाता है, आपकी श्वास-श्वास आशा से भर जाती है। आपके विचारों पर आशा का प्रकाश भर जाता है और आपके प्राण के स्पंदन में, आपके हृदय की धड़कन में आशा व्याप्त हो जाती है।

आपका पूरा व्यक्तित्व जब आशा से भर जाता है, तो भूमिका बनती है कि आप कुछ कर सकेंगे। और निराशा का भी व्यक्तित्व होता है--कण-कण रो रहा है, उदास है, थका है, डूबा हुआ है, कोई प्राण नहीं हैं। सब--जैसे कि आदमी जिंदा नाममात्र को हो और मरा हुआ है। ऐसा आदमी किसी प्रयास पर निकलेगा, किसी अभियान पर, तो क्या पा सकेगा? और आत्मिक जीवन का अभियान सबसे बड़ा अभियान है। इससे बड़ी कोई चोटी नहीं है, जिसको कोई मनुष्य कभी चढ़ा हो। इससे बड़ी कोई गहराई नहीं है समुद्रों की, जिसमें मनुष्य ने कभी डुबकी लगाई हो। स्वयं की गहराई सबसे बड़ी गहराई है और स्वयं की ऊंचाई सबसे बड़ी ऊंचाई है।

इस अभियान पर जो निकला हो, उसे बड़ी आशाओं से भरा हुआ होना चाहिए।

तो मैं आपको कहूंगा, तीन दिन आशा की एक भाव-स्थिति को कायम रखें। आज रात ही जब सोएं, तो बहुत आशा से भरे हुए सोएं। और यह विश्वास लेकर सोएं कि कल सुबह जब आप उठेंगे, तो कुछ होगा, कुछ हो सकेगा, कुछ किया जा सकेगा।

दूसरी बात मैंने कही, आशा का एक दृष्टिकोण। आशा के इस दृष्टिकोण के साथ ही यह भी आपको स्मरण दिला दूं, इन पीछे कुछ वर्षों के अनुभव से इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि हमारी निराशा इतनी गहरी है कि जब हमें कुछ मिलना भी शुरु होता है, तो निराशा के कारण दिखाई नहीं पड़ता।

अभी मेरे पास एक व्यक्ति आते थे। वे अपनी पत्नी को मेरे पास लाए। उन्होंने पहले दिन, जब वे आए थे, तो मुझे कहा कि मेरी पत्नी को नींद नहीं आती। बिलकुल नींद नहीं आती बिना दवा के। और दवा से भी तीन-चार घंटे से ज्यादा नींद नहीं आती। और मेरी पत्नी भयभीत है। अनजाने भय उसे परेशान किए रहते हैं। घर के बाहर निकलती है, तो डरती है। घर के भीतर होती है, तो डरती है कि मकान न गिर जाए। अगर पास में कोई न हो, तो घबड़ाती है कि अकेले में कहीं मृत्यु न हो जाए, इसलिए पास में कोई होना ही चाहिए। रात को सब दवाइयां अपने पास में रखकर सोती है कि बीच रात में कोई खतरा न हो जाए। उन्होंने मुझे अपनी पत्नी की यह भय की और निराशा की हालत बतायी।

मैंने उनको कहा कि ध्यान का यह छोटा-सा प्रयोग शुरु करिए, लाभ होगा। उन्होंने प्रयोग शुरु किया। सात दिन बाद वे मुझे मिले। मैंने उनसे पूछा, 'क्या हुआ? कैसा है?' वे बोले, 'अभी कुछ खास नहीं हुआ। बस नींद भर आने लगी है।' उन्होंने मुझसे कहा, 'अभी कुछ खास नहीं हुआ, बस नींद भर आने लगी है।'

सात दिन बाद वे मुझे फिर मिले, मैंने उनसे पूछा, 'क्या हुआ?' बोले, 'अभी कुछ खास नहीं हुआ, थोड़ा-सा भय दूर हो गया है।' वे सात दिन बाद मुझे फिर मिले। मैंने उनसे पूछा, 'कुछ हुआ?' वे बोले, 'अभी कुछ विशेष तो नहीं हुआ, यही है कि थोड़ी नींद आ जाती है, भय कम हो गया है, दवाइयां-ववाइयां अपने पास नहीं रखती। और कुछ खास नहीं हुआ।'

इसको मैं निराशा की दृष्टि कहता हूं। और ऐसे आदमी को कुछ हो भी जाए, तो उसे पता नहीं चलेगा। यह दृष्टि तो बुनियाद से गलत है। इसका तो मतलब है, इस आदमी को कुछ हो नहीं सकता, अगर हो भी जाए, तो भी--तो भी उसे कभी पता नहीं चलेगा कि कुछ हुआ। और बहुत कुछ हो सकता था, जो कि रुक जाएगा।

तो आशा के इस दृष्टिकोण के साथ-साथ प्रसंगवशात मैं आपसे यह कहूं, इन तीन दिनों में जो घटित हो, उसको स्मरण रखें; और जो घटित न हो, उसको बिलकुल स्मरण न रखें।

इन तीन दिनों में जो घटित हो, उसको स्मरण रखें। और जो घटित न हो, जो न हो पाए, उसे बिलकुल स्मरण न रखें। स्मरणीय वह है जो घटित हुआ हो। थोड़ा-सा कण भी अगर लगे शांति का, उसको पकड़ें। वह आपको आशा देगा और गतिमान करेगा। और अगर आप उसको पकड़ते हैं जो नहीं हुआ, तो आपकी गति अवरुद्ध हो जाएगी और जो हुआ है, वह भी मिट जाएगा।

तो इन तीन दिनों में यह भी स्मरण रखें कि इन ध्यान के प्रयोगों में जो थोड़ा-सा आपको अनुभव हो, उसको स्मरण रखें, उसको आधार बनाएं आगे के लिए। जो न हो, उसको आधार न बनाएं। मनुष्य जीवनभर इसी दुख में रहता है। जो उसे मिलता है, उसे भूल जाता है। और जो उसे नहीं मिलता, उसका स्मरण रखता है। ऐसा आदमी गलत आधार पर खड़ा है। वैसा आदमी बनें, जिसे जो मिला है, उसे स्मरण रखे और उस आधार पर खड़ा हो।

अभी मैं पढ़ता था, एक व्यक्ति ने किसी को कहा कि 'मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं बहुत दरिद्र हूं।' उस दूसरे व्यक्ति ने कहा कि 'अगर तुम दरिद्र हो, तो एक काम करो। मैं तुम्हारी बायीं आंख चाहता हूं। इसके मैं पांच हजार रुपए देता हूं। तुम पांच हजार रुपए ले लो और बायीं आंख दे दो।' उस आदमी ने कहा, 'यह मुश्किल है, मैं बायीं आंख नहीं दे सकता।' उसने कहा, 'मैं दस हजार रुपए देता हूं, दोनों आंखें दे दो।' उसने कहा, 'दस हजार! फिर भी मैं नहीं दे सकता।' उसने कहा, 'मैं तुम्हें पचास हजार रुपए देता हूं, तुम अपनी जान मुझे दे दो।' उसने कहा, 'यह असंभव है। मैं नहीं दे सकता।' तो उस आदमी ने कहा, 'तब तो तुम्हारे पास बहुत कुछ है, जिसका बहुत दाम है। तुम्हारे पास दो आंखें हैं, जिनको तुम दस हजार में देने को राजी नहीं हो। लेकिन तुम कह रहे थे, मेरे पास कुछ भी नहीं है।'

मैं उस आदमी और उस विचार की बात आपसे कह रहा हूं। जो आपके पास है, उसको स्मरण रखें। और जो साधना में मिले थोड़ा-सा, रत्तीभर भी मिले, उसे स्मरण रखें। उसका विचार करें, उसकी चर्चा करें। उसके आधार से और मिलने का रास्ता बनेगा, क्योंकि आशा बढ़ेगी। और जो नहीं मिला...।

एक महिला मेरे पास आती थीं। पढ़ी-लिखी हैं, एक कालेज में प्रोफेसर हैं, संस्कृत की विद्वान हैं। वे मेरे पास आती थीं। एक सात दिन का प्रयोग चलता था ध्यान का, उसमें आती थीं। पहले दिन वे प्रयोग करने के बाद उठीं और बाहर जाकर मुझसे कहीं, 'क्षमा करें, अभी मुझे आज कोई ईश्वर के दर्शन नहीं हुए!' पहले दिन वे प्रयोग कीं और बाहर जाकर मुझसे कहीं, 'क्षमा करें, अभी मुझे कोई ईश्वर के दर्शन नहीं हुए।'

मैंने कहा, 'अगर ईश्वर के दर्शन हो जाते, तो ही खतरे की बात होती। क्योंकि इतना सस्ता जो ईश्वर मिल जाए, उसे फिर शायद आप किसी मतलब का भी न समझतीं।' और मैंने उनसे कहा कि 'जो यह आकांक्षा करे कि वह दस मिनट आंख बंद करके बैठ गया है, इसलिए ईश्वर को पाने का हकदार हो गया है, उससे ज्यादा मूढ़तापूर्ण और कोई वृत्ति और विचार नहीं हो सकता।'

तो मैं आपसे यह कहता हूं कि जो थोड़ी-सी भी शांति की किरण आपको मिले, उसे आप सूरज समझें। इसलिए सूरज समझें कि उसी किरण का सहारा पकड़कर आप सूरज तक पहुंच जाएंगे। इस अंधकार से भरे कमरे में अगर मैं बैठा हूं और एक मुझे थोड़ी-सी किरण दिखाई पड़ती हो, तो मेरे पास दो रास्ते हैं। एक तो मैं यह कहूं कि यह किरण क्या है, अंधकार इतना घना है। इस किरण से क्या होगा! अंधकार इतना ज्यादा है। एक रास्ता यह भी है कि मैं यह कहूं कि अंधकार कितना ही हो, लेकिन एक किरण मुझे उपलब्ध है। और अगर मैं इसकी दिशा में इसका अनुगमन करूं, तो मैं वहां तक पहुंच जाऊंगा, जहां से किरण पैदा हुई और जहां सूरज होगा।

तो मैं आपको अंधकार ज्यादा हो, तो भी उसे विचार करने को नहीं कहता। किरण छोटी हो, तो भी उस पर ही विचार को खड़ा करने को कहता हूं। इससे आशा की दृष्टि खड़ी होगी।

अन्यथा हमारे जीवन बड़े उलटे हैं। अगर मैं आपको एक गुलाब के फूल के पौधे के पास ले जाऊं और आपको पौधा दिखाऊं, तो शायद आप मुझसे कहें कि 'इसमें क्या है! भगवान कैसा अन्यायी है! दो-चार तो फूल हैं, हजारों कांटे हैं!' एक दृष्टि यह भी है कि गुलाब के पास जाकर हम यह कहें कि 'भगवान कैसा अन्यायी है! हजारों कांटे हैं, कहीं एकाध फूल है।'

इसको कहने का एक ढंग और भी हो सकता है, एक दृष्टि और भी हो सकती है, एक और एप्रोच हो सकती है कि कोई आदमी उसी पौधे के पास जाकर यह कहे कि 'भगवान कैसा अदभुत है कि जहां लाखों कांटे हैं, उनमें भी एक फूल खिल जाता है!' कोई इसे यूं भी देख सकता है कि कहे कि 'जहां लाखों कांटे हैं, उनमें भी एक फूल खिल जाता है। दुनिया अदभुत है! कांटों के बीच भी फूल के खिलने की संभावना कितनी आश्चर्यजनक है!'

तो मैं आपको दूसरी दृष्टि रखने को कहूंगा इन तीन दिनों में। छोटी-सी भी आशा की जो भी झलक आपको मिले साधना में, उसको आधार बनाएं, उसको संबल बनाएं।

तीसरी बात, साधना के इन तीन दिनों में आपको ठीक वैसे ही नहीं जीना है, जैसे आप आज सांझ तक जीते रहे हैं। मनुष्य बहुत कुछ आदतों का यंत्र है। और अगर मनुष्य अपनी पुरानी आदतों के घेरे में ही चले, तो साधना की नई दृष्टि खोलने में उसे बड़ी कठिनाई हो जाती है। तो थोड़े-से परिवर्तन करने को मैं आपसे कहूंगा।

एक परिवर्तन तो मैं आपसे यह कहूंगा कि इन तीन दिनों में आप ज्यादा बातचीत न करें। बातचीत इस सदी की सबसे बड़ी बीमारी है। और आपको पता नहीं कि आप कितनी बातें कर रहे हैं। सुबह से सांझ तक, जब तक आप जाग रहे हैं, बातें कर रहे हैं। या तो किसी से कर रहे हैं, अगर फिर कोई मौजूद नहीं है, तो अपने भीतर खुद से ही कर रहे हैं।

इन तीन दिनों में, इसका बहुत सजग प्रयास करें कि आपकी बातचीत की जो बहुत यांत्रिक आदत है, वह न चले। आदत है हमारी। यह साधक के जीवन में बहुत संघातक है।

इन तीन दिनों में मैं चाहूंगा, आप कम से कम बात करें। और जो बात भी करें, वह बात भी अच्छा हो कि आपकी वही सामान्य न हो, जो आप रोज करते हैं। आप क्या रोज बातें कर रहे हैं, उसका कोई बहुत मूल्य है? आप उसे नहीं करेंगे, तो कोई नुकसान है? जिसको आप कर रहे हैं, उसका, अगर नहीं उसे बताएंगे, कोई अहित है?

इन तीन दिनों में स्मरण रखें कि हमें किसी से कोई विशेष बात नहीं करनी है। बहुत अदभुत लाभ होगा। अगर कोई थोड़ी-बहुत बात आप करें भी, अच्छा हो कि वह साधना से ही संबंधित हो, और कुछ न हो। अच्छा तो यह है कि न ही करें। ज्यादा से ज्यादा समय मौन को रखें। वह भी जबरदस्ती मौन रखने को नहीं कहता हूं कि आप बिलकुल बोलें ही न, या लिखकर बोलें। आप बोलने के लिए मुक्त हैं, बातचीत करने को मुक्त नहीं हैं। और स्मरणपूर्वक, जितना सार्थक हो उतना बोलें, बाकी चुप रहें।

दो लाभ होंगे। एक तो बड़ा लाभ होगा कि व्यर्थ जो शक्ति व्यय होती है बोलने में, वह संचित होगी। और उस शक्ति का हम उपयोग साधना में कर सकेंगे। दूसरा लाभ यह होगा कि आप दूसरे लोगों से टूट जाएंगे और आप थोड़े एकांत में हो जाएंगे। हम यहां पहाड़ पर आए हैं। पहाड़ पर आने का कोई प्रयोजन पूरा न होगा, अगर यहां हम दो सौ लोग इकट्ठे हुए हैं और आपस में बातचीत करते रहे और बैठकर गपशप करते रहे। तो हम भीड़ के भीड़ में रहे, हम एकांत में नहीं आ पाए।

एकांत में आने के लिए पहाड़ पर जाना ही जरूरी नहीं है, यह भी जरूरी है कि आप दूसरे लोगों से अपना संबंध थोड़ा शिथिल कर लें और अकेले हो जाएं। बहुत नाममात्र को संबंध रखें। समझें कि आप अकेले हैं इस पहाड़ पर और दूसरा कोई नहीं है। और आपको इस तरह जीना है, जैसे आप अकेले आए होते--अकेले रहते, अकेले घूमने जाते, अकेले किसी दरख्त के नीचे बैठते--वैसे ही। झुंड में आप न जाएं। चार-छः मित्र बनकर न जाएं। अलग-अलग, एक-एक, इन तीन दिनों में हम इस तरह जीएं।

यह मैं आपको कहूं कि भीड़ में जीवन का कोई श्रेष्ठ सत्य न कभी पैदा होता है और न कभी अनुभव होता है। भीड़ में कोई महत्वपूर्ण बात कभी नहीं हुई है। जो भी सत्य के अनुभव हुए हैं, वे अत्यंत एकांत में और अकेलेपन में हुए हैं।

जब हम किसी मनुष्य से नहीं बोलते और जब हम सारी बातचीत बाहर और भीतर बंद कर देते हैं, तो प्रकृति किसी बहुत रहस्यमय ढंग से हमसे बोलना शुरू कर देती है। वह शायद हमसे निरंतर बोल रही है। लेकिन हम अपनी बातचीत में इतने व्यस्त हैं कि वह धीमी-सी आवाज हमें सुनाई नहीं पड़ती। हमें अपनी सारी आवाज बंद कर देनी होगी, ताकि हम उस अंतस-चेतन की आवाज को सुन सकें, जो प्रत्येक के भीतर चल रही है।

तो इन तीन दिनों में बिलकुल बातचीत को क्षीण कर दें स्मरणपूर्वक। अगर आदतवश बातचीत शुरू हो जाए और खयाल आ जाए, तो बीच में वहीं तोड़ दें और क्षमा मांग लें कि भूल हो गई। अकेले में जाएं। यहां जो हम प्रयोग करेंगे, वे तो करेंगे ही, लेकिन आप अकेले में प्रयोग करें। कहीं भी चले जाएं। किसी दरख्त के नीचे बैठें।

हम यह भी भूल गए हैं कि हमारा प्रकृति से कोई संबंध है और कोई नाता है। और हमको यह भी पता नहीं है कि प्रकृति के सान्निध्य में व्यक्ति जितनी शीघ्रता से परमात्मा की निकटता में पहुंचता है, उतना और कहीं नहीं पहुंचता।

तो इस अदभुत तीन दिन के मौके का, अवसर का, लाभ उठाएं। अकेले में चले जाएं और व्यर्थ की बातचीत न करें। वह तीन दिन के बाद फिर करने को आपको काफी समय रहेगा; उसे बाद में कर ले सकते हैं।

इस तीसरी बात को स्मरण रखें कि अधिकतर तीन दिन मौन में, एकांत में और अकेले में बिताने हैं। सब साथ हों, तो भी अकेले में ही हम बिता रहे हैं। साधना का जीवन अकेले का जीवन है। हम यहां इतने लोग हैं, हम ध्यान करने बैठेंगे, तो लगेगा कि समूह में ध्यान कर रहे हैं। लेकिन सब ध्यान वैयक्तिक हैं। समूह का कोई ध्यान नहीं होता। बैठे जरूर हम यहां इतने लोग हैं। लेकिन हर एक भीतर जब अपने जाएगा, तो अकेला रह जाएगा। जब वह आंख बंद करेगा, अकेला हो जाएगा। और जब शांति में प्रवेश करेगा, उसके साथ कोई भी नहीं होगा। हम यहां दो सौ लोग होंगे, लेकिन हर एक आदमी केवल अपने साथ होगा। बाकी एक सौ निन्यानबे के साथ नहीं होगा।

सामूहिक कोई ध्यान नहीं होता, न कोई प्रार्थना होती है। सब ध्यान, सब प्रार्थनाएं वैयक्तिक होती हैं, अकेले होती हैं। यहां भी हम अकेले रहेंगे, बाहर भी हम अकेले रहेंगे। और अधिकतर मौन में समय को व्यतीत करेंगे। नहीं बोलेंगे। इतना ही काफी नहीं है कि नहीं बोलेंगे। अंतस में भी स्मरण रखेंगे कि व्यर्थ की जो निरंतर बकवास चल रही है भीतर आपके--आप खुद ही बोल रहे हैं, खुद ही उत्तर दे रहे हैं--उसे भी शिथिल रखेंगे, उसे भी छोड़ेंगे। अगर भीतर वह शिथिल न होती हो, तो बहुत स्पष्ट भीतर आदेश दें कि बकवास बंद कर दो। बकवास मुझे पसंद नहीं है। अपने भीतर स्वयं से कहें।

यह भी मैं आपको कहूं कि साधना के जीवन में अपने से कुछ आदेश देना बहुत महत्वपूर्ण है। कभी आदेश देकर देखें। अकेले में बैठ जाएं और अपने मन को कह दें कि 'बकवास बंद। मुझे यह पसंद नहीं है।' और आप हैरान होंगे कि एक झटके से बातचीत भीतर टूटेगी।

तीन दिन स्मरणपूर्वक भीतर आदेश दे दें कि बातचीत मुझे नहीं करनी है। आप तीन दिन में पाएंगे कि अंतर पड़ा है और क्रमशः भीतर की बातचीत बंद हुई है।

पांचवीं बात, कुछ शिकायतें हो सकती हैं, कोई तकलीफ हो सकती है। तीन दिन उसका कोई खयाल नहीं करेगा। कोई छोटी-मोटी तकलीफ हो, अड़चन हो, उसका कोई खयाल नहीं करेगा। हम किन्हीं सुविधाओं के लिए यहां इकट्ठे नहीं हुए हैं।

अभी-अभी मैं एक चीनी साध्वी का जीवन पढ़ता था। वह एक गांव में गई थी। उस गांव में थोड़े-से मकान थे। उसने उन मकानों के सामने जाकर--सांझ हो रही थी, रात पड़ने को थी, वह अकेली साध्वी थी--उसने लोगों से कहा कि 'मुझे घर में ठहर जाने दें।' अपरिचित स्त्री। फिर उस गांव में जो लोग रहते थे, वह उनके धर्म के मानने वाली नहीं थी। लोगों ने अपने दरवाजे बंद कर लिए। दूसरा गांव बहुत दूर था। और रात, और अकेली। उसे उस रात एक खेत में जाकर सोना पड़ा। वह एक चेरी के दरख्त के नीचे जाकर चुपचाप सो गई।

रात दो बजे उसकी नींद खुली। सर्दी थी, और सर्दी की वजह से उसकी नींद खुल गई। उसने देखा, फूल सब खिल गए हैं और दरख्त पूरा फूलों से लदा है और चांद ऊपर आ गया है। और बहुत अदभुत चांदनी है। और उसने उस आनंद के क्षण को अनुभव किया।

सुबह वह उस गांव में गई और उन-उन को धन्यवाद दिया, जिन्होंने रात्रि द्वार बंद कर लिए थे। और उन्होंने पूछा, 'काहे का धन्यवाद!' उसने कहा, 'तुमने अपने प्रेमवश, तुमने मुझ पर करुणा और दया करके रात अपने द्वार बंद कर लिए, उसका धन्यवाद। मैं एक बहुत अदभुत क्षण को उपलब्ध कर सकी। मैंने चेरी के फूल खिले देखे और मैंने पूरा चांद देखा। और मैंने कुछ ऐसा देखा जो मैंने जीवन में नहीं देखा था। और अगर आपने मुझे जगह दे दी होती, तो मैं वंचित रह जाती। तब मैं समझी कि उनकी करुणा कि उन्होंने क्यों मेरे लिए द्वार बंद कर रखे हैं।'

यह एक दृष्टि है, एक कोण है। आप भी हो सकता था उस रात द्वार से लौटा दिए गए होते। तो शायद आप इतने गुस्से में होते रातभर और उन लोगों के प्रति इतनी आपके मन में घृणा और इतना क्रोध होता कि शायद आपको जब चेरी में फूल खिलते, तो दिखाई नहीं पड़ते। और जब चांद ऊपर आता, तो आपको पता नहीं चलता। धन्यवाद तो बहुत दूर था, आप यह सब अनुभव भी नहीं कर पाते।

जीवन में एक और स्थिति भी है, जब हम प्रत्येक चीज के प्रति धन्यवाद से भर जाते हैं। साधक स्मरण रखें कि उन्हें इन तीन दिनों में प्रत्येक चीज के प्रति धन्यवाद से भर जाना है। जो मिलता है, उसके लिए धन्यवाद। जो नहीं मिलता, उससे कोई प्रयोजन नहीं है। उस भूमिका में अर्थ पैदा होता है। उस भूमिका में भीतर एक निश्चिंतता पैदा होती है और एक सरलता पैदा होती है।

और अंतिम रूप से एक बात और। इन तीन दिनों में हम निरंतर प्रयास करेंगे अंतस प्रवेश का, ध्यान का, समाधि का। उस प्रवेश के लिए एक बहुत प्रगाढ़ संकल्प की जरूरत है। प्रगाढ़ संकल्प का यह अर्थ है, हमारा जो मन है, उसका एक बहुत छोटा-सा हिस्सा, जिसको हम चेतन मन कहते हैं, उसी में सब विचार चलते रहते हैं। उससे बहुत ज्यादा गहराइयों में हमारा नौ हिस्सा मन और है। अगर हम मन के दस खंड करें, तो एक खंड हमारा कांशस है, चेतन है। नौ खंड हमारे अचेतन और अनकांशस हैं। इस एक खंड में ही हम सब सोचते-विचारते हैं। नौ खंडों में उसकी कोई खबर नहीं होती, नौ खंडों में उसकी कोई सूचना नहीं पहुंचती।

हम यहां सोच लेते हैं कि ध्यान करना है, समाधि में उतरना है, लेकिन हमारे मन का बहुत-सा हिस्सा अपरिचित रह जाता है। वह अपरिचित हिस्सा हमारा साथ नहीं देगा। और अगर उसका साथ हमें नहीं मिला, तो सफलता बहुत मुश्किल है। उसका साथ मिल सके, इसके लिए संकल्प करने की जरूरत है। और संकल्प मैं आपको समझा दूं, कैसा हम करेंगे। अभी यहां संकल्प करके उठेंगे। और फिर जब रात्रि में आप अपने बिस्तरों पर जाएं, तो पांच मिनट के लिए उस संकल्प को पुनः दोहराएं और उस संकल्प को दोहराते-दोहराते ही नींद में सो जाएं।

संकल्प को पैदा करने का जो प्रयोग है, वह मैं आपको समझा दूं, उसे हम यहां भी करेंगे और रोज नियमित करेंगे। संकल्प से मैंने आपको समझाया कि आपका पूरा मन चेतन और अचेतन, इकट्ठे रूप से यह भाव कर ले कि मुझे शांत होना है, मुझे ध्यान को उपलब्ध होना है।

जिस रात्रि गौतम बुद्ध को समाधि उपलब्ध हुई, उस रात वे अपने बोधिवृक्ष के नीचे बैठे और उन्होंने कहा, 'अब जब तक मैं परम सत्य को उपलब्ध न हो जाऊं, तब तक यहां से उठूंगा नहीं।' हमें लगेगा, इससे क्या मतलब है? आपके नहीं उठने से परम सत्य कैसे उपलब्ध हो जाएगा? लेकिन यह खयाल कि जब तक मुझे परम सत्य उपलब्ध न हो जाए, मैं यहां से उठूंगा नहीं, यह सारे प्राण में गूंज गया। वे नहीं उठे, जब तक परम सत्य उपलब्ध नहीं हुआ। और आश्चर्य है कि परम सत्य उसी रात्रि उन्हें उपलब्ध हुआ। वे छः वर्ष से चेष्टा कर रहे थे, लेकिन इतना प्रगाढ़ संकल्प किसी दिन नहीं हुआ था।

संकल्प की प्रगाढ़ता कैसे पैदा हो, वह मैं छोटा-सा प्रयोग आपको कहता हूं। वह हम अभी यहां करेंगे और फिर उसे हम रात्रि में नियमित करके सोएंगे।

अगर आप अपनी सारी श्वास को बाहर फेंक दें और फिर श्वास को अंदर ले जाने से रुक जाएं, क्या होगा? अगर मैं अपनी सारी श्वास बाहर फेंक दूं और फिर नाक को बंद कर लूं और श्वास को भीतर न जाने दूं, तो क्या होगा? क्या थोड़ी देर में मेरे सारे प्राण उस श्वास को लेने को तड़फने नहीं लगेंगे? क्या मेरा रोआं-रोआं और मेरे शरीर के जो लाखों कोष्ठ हैं, वे मांग नहीं करने लगेंगे कि हवा चाहिए, हवा चाहिए! जितनी देर मैं रोकूंगा, उतना ही मेरे गहरे अचेतन का हिस्सा पुकारने लगेगा, हवा चाहिए! जितनी देर मैं रोके रहूंगा, उतने ही मेरे प्राण के नीचे के हिस्से भी चिल्लाने लगेंगे, हवा चाहिए! अगर मैं आखिरी क्षण तक रोके रहूं, तो मेरा पूरा प्राण मांग करने लगेगा, हवा चाहिए! यह सवाल आसान नहीं है कि ऊपर का हिस्सा ही कहे। अब यह जीवन और मृत्यु का सवाल है, तो नीचे के हिस्से भी पुकारेंगे कि हवा चाहिए!

इस क्षण की स्थिति में, जब कि पूरे प्राण हवा को मांगते हों, तब आप अपने मन में यह संकल्प सतत दोहराएं कि मैं ध्यान में प्रवेश करके रहूंगा। उन क्षणों में, जब आपके पूरे प्राण श्वास मांगते हों, तब आप अपने मन में यह भाव दोहराते रहें कि मैं ध्यान में प्रवेश करके रहूंगा। यह मेरा संकल्प है कि मैं ध्यान में प्रवेश करके रहूंगा। उस वक्त आपका मन यह दोहराता रहे। उस वक्त आपके प्राण श्वास मांग रहे होंगे और आपका मन यह दोहराएगा। जितनी गहराई तक प्राण कंपित होंगे, उतनी गहराई तक आपका यह संकल्प प्रविष्ट हो जाएगा। और अगर आपने पूरे प्राण-कंपित हालत में इस वाक्य को दोहराया, तो यह संकल्प प्रगाढ़ हो जाएगा। प्रगाढ़ का मतलब यह है कि वह आपके अचेतन, अनकांशस माइंड तक प्रविष्ट हो जाएगा।

इसे हम रोज ध्यान के पहले भी करेंगे। रात्रि में सोते समय भी आप इसे करके सोएंगे। इसे करेंगे, फिर सो जाएंगे। जब आप सोने लगेंगे, तब भी आपके मन में यह सतत ध्वनि बनी रहे कि मैं ध्यान में प्रविष्ट होकर रहूंगा। यह मेरा संकल्प है कि मुझे ध्यान में प्रवेश करना है। यह वचन आपके मन में गूंज़ता रहे और गूंज़ता रहे, और आप कब सो जाएं, आपको पता न पड़े।

सोते समय चेतन मन तो बेहोश हो जाता है और अचेतन मन के द्वार खुलते हैं। अगर उस वक्त आपके मन में यह बात गूंज़ती रही, गूंज़ती रही, तो यह अचेतन पर्तों में प्रविष्ट हो जाएगी। और आप इसका परिणाम देखेंगे। इन तीन दिनों में ही परिणाम देखेंगे।

संकल्प को प्रगाढ़ करने का उपाय आप समझें। उपाय है, सबसे पहले धीमे-धीमे पूरी श्वास भर लेना, पूरे प्राणों में, पूरे फेफड़ों में श्वास भर जाए, जितनी भर सकें। जब श्वास पूरी भर जाए, तब भी मन में यह भाव गूंज़ता रहे कि मैं संकल्प करता हूं कि ध्यान में प्रविष्ट होकर रहूंगा। यह वाक्य गूंज़ता ही रहे।

फिर श्वास बाहर फेंकी जाए, तब भी यह वाक्य गूंज़ता रहे कि मैं संकल्प करता हूं कि मैं ध्यान में प्रवेश करके रहूंगा। यह वाक्य दोहरता रहे। फिर श्वास फेंकते जाएं बाहर। एक घड़ी आएगी, आपको लगेगा, अब श्वास भीतर बिलकुल नहीं है, तब भी थोड़ी है, उसे भी फेंकें और वाक्य को दोहराते रहें। आपको लगेगा, अब बिलकुल नहीं है, तब भी है, आप उसे भी फेंकें।

आप घबराएं न। आप पूरी श्वास कभी नहीं फेंक सकते हैं। यानि इसमें घबराने का कोई कारण नहीं है। आप पूरी श्वास कभी फेंक ही नहीं सकते हैं। इसलिए जितना आपको लगे कि अब बिलकुल नहीं है, उस वक्त भी थोड़ी है, उसको भी फेंकें। जब तक आपसे बने, उसे फेंकते जाएं और मन में यह गूंज़ता रहे कि मैं संकल्प करता हूं कि मैं ध्यान में प्रवेश करके रहूंगा।

यह अदभुत प्रक्रिया है। इसके माध्यम से आपके अचेतन पर्तों में विचार प्रविष्ट होगा, संकल्प प्रविष्ट होगा और उसके परिणाम आप कल सुबह से ही देखेंगे।

तो एक तो संकल्प को प्रगाढ़ करना है। उसको अभी हम जब अलग होंगे यहां से, तो उस प्रयोग को करेंगे। उसको पांच बार करना है। यानि पांच बार श्वास को फेंकना और रोकना है, और पांच बार निरंतर उस भाव को अपने भीतर दोहराना है। जिनको कोई हृदय की बीमारी हो या कोई तकलीफ हो, वे उसे बहुत ज्यादा तेजी से नहीं करेंगे, उसे बहुत आहिस्ता करेंगे; जितना उनको सरल मालूम पड़े और तकलीफ न मालूम पड़े।

यह जो संकल्प की बात है, इसको मैंने कहा कि रोज रात्रि को इन तीन दिनों में सोते समय करके सोना है। सोते वक्त जब बिस्तर पर आप लेट जाएं, इसी भाव को करते-करते क्रमशः नींद में विलीन हो जाना है।

यह संकल्प की स्थिति अगर हमने ठीक से पकड़ी और अपने प्राणों में उस आवाज को पहुंचाया, तो परिणाम होना बहुत सरल है और बहुत-बहुत आसान है।

ये थोड़ी-सी बातें आपको आज कहनी थीं। इनमें जो प्रासांगिक जरूरतें हैं, वह मैं समझता हूं, आप समझ गए होंगे। जैसा मैंने कहा कि बातचीत नहीं करनी है। स्वाभाविक है कि आपको अखबार, रेडियो, इनका उपयोग नहीं करना है। क्योंकि वह भी बातचीत है। मैंने आपसे कहा, मौन में और एकांत में होना है। इसका स्वाभाविक मतलब हुआ कि जहां तक बने साथियों से दूर रहना है। जितनी देर हम यहां मिलेंगे, वह अलग। भोजन के लिए जाएंगे, वह अलग। वहां भी आप बड़े मौन से और बड़ी शांति से भोजन करें। वहां भी सन्नाटा हो, जैसे पता न चले कि आप वहां हैं। यहां भी आएं, तो सन्नाटे में और शांति में आएं।

देखें, तीन दिन शांत रहने का प्रयोग क्या परिणाम लाता है! रास्ते पर चलें, तो बिलकुल शांत। उठें-बैठें, तो बिलकुल शांत। और अधिकतर एकांत में चले जाएं। सुंदर कोई जगह चुनें, वहां चुपचाप बैठ जाएं। अगर कोई साथ है, तो वह भी चुपचाप बैठे, बातचीत न करे। अन्यथा पहाड़ियां व्यर्थ हो जाती हैं। सौंदर्य व्यर्थ हो जाता है। जो सामने है, वह दिखाई नहीं पड़ता। आप बातचीत में सब समाप्त कर देते हैं। अकेले में जाएं।

और इसी भांति ये थोड़ी-सी बातें मैंने कहीं आपके लिए जो-जो जरूरी है और हर एक के लिए। अगर आपके भीतर प्यास नहीं मालूम होती बिलकुल, तो उस प्यास को कैसे पैदा किया जाए, उसके संबंध में कल मुझसे प्रश्न पूछ लें। अगर आपको ऐसा नहीं लगता है, कि मुझे कोई आशा नहीं मालूम होती है; तो आशा कैसे पैदा हो, उसके संबंध में कल सुबह मुझसे प्रश्न पूछ लें। अगर आपको लगता है कि मुझे कोई संकल्प करने में कठिनाई है, या नहीं बन पाता, या नहीं होता, तो सारी कठिनाइयां मुझसे सुबह पूछ लें।

कल सुबह ही तीन दिन के लिए जो भी कठिनाइयां आ सकती हैं, वह आप मुझसे पूछ लें, ताकि तीन दिन में कोई भी समय व्यय न हो। अगर प्रत्येक व्यक्ति की कोई अपनी वैयक्तिक तकलीफ और दुख और पीड़ा है, जिससे वह मुक्त होना चाहता है, या जिसकी वजह से वह ध्यान में नहीं जा सकता, या जिसकी वजह से उसे ध्यान में प्रवेश करना मुश्किल होता है, समझ लें। अगर आपको कोई एक विशेष चिंता है, जो आपको प्रविष्ट नहीं होने देती शांति में, तो आप उसके लिए अलग से पूछ लें। अगर आपको कोई ऐसी पीड़ा है, जो आपको नहीं प्रविष्ट होने देती, उसको आप अलग से पूछ लें। वह सबके लिए नहीं होगी सामूहिक। वह आपकी वैयक्तिक होगी, उसके लिए आप अलग प्रयोग करेंगे। और जो भी तकलीफ हो, वह स्पष्ट सुबह रख दें, ताकि हम तीन दिन के लिए व्यवस्थित हो जाएं।

ये थोड़ी-सी बातें मुझे आपसे कहनी थीं। आपकी एक भाव-दृष्टि बने। और फिर जो हमें करना है, वह हम कल से शुरू करेंगे और कल से समझेंगे।

अभी हम सब थोड़े-थोड़े फासले पर बैठ जाएंगे। हॉल तो बड़ा है, सब फासले पर बैठ जाएंगे, ताकि हम संकल्प का प्रयोग करें और फिर हम यहां से विदा हों।

...ऐसे झटके से नहीं, बहुत आहिस्ता-आहिस्ता, पूरा फेफड़ा भर लेना है। जब आप फेफड़े को भरेंगे, तब आप स्वयं अपने मन में दोहराते रहेंगे कि मैं संकल्प करता हूं कि मैं ध्यान में प्रवेश करके रहूंगा। इस वाक्य को आप दोहराते रहेंगे।

फिर जब श्वास पूरी भर जाए आखिरी सीमा तक, तब उसे थोड़ी देर रोकें और अपने मन में यह दोहराते रहें। घबड़ाहट बढ़ेगी। मन होगा, बाहर फेंक दें। तब भी थोड़ी देर रोकें। और इस वाक्य को दोहराते रहें। फिर श्वास को धीरे-धीरे बाहर निकालें। तब भी वाक्य दोहरता रहे। फिर सारी श्वास बाहर निकालते जाएं, आखिरी सीमा तक लगे, तब भी निकाल दें, तब भी वाक्य दोहरता रहे। फिर अंदर जब खाली हो जाए, उस खालीपन को रोकें। श्वास को अंदर न लें। फिर दोहरता रहे वाक्य, अंतिम समय तक। फिर धीरे-धीरे श्वास को अंदर लें। ऐसा पांच बार। यानि एक बार का मतलब हुआ, एक दफा अंदर लेना और बाहर छोड़ना। एक बार। इस तरह पांच बार। क्रमशः धीरे-धीरे सब करें।

जब पांच बार कर चुकें, तब बहुत आहिस्ता से रीढ़ को सीधा रखकर ही फिर धीमे-धीमे श्वास लेते रहें और पांच मिनट विश्राम से बैठे रहें। ऐसा कोई दस मिनट हम यहां प्रयोग करें। फिर चुपचाप सारे लोग चले जाएंगे। बातचीत न करने का स्मरण रखेंगे। अभी से उसको शुरु कर देना है। शिविर शुरू हो गया है इस अर्थों में। सोते समय फिर इस प्रयोग को पांच-सात दफा करें, जितनी देर आपको अच्छा लगे। फिर सो जाएं। सोते समय सोचते हुए सोएं उसी भाव को कि मैं शांत होकर रहूंगा, यह मेरा संकल्प है। और नींद आपको पकड़ ले और आप उसको सोचते रहें।

तो लाइट बुझा दें। जब आपका पांच बार हो जाए, तो आप चुपचाप अपना-अपना बैठकर थोड़ी धीमी श्वास लेते हुए बैठे रहेंगे। रीढ़ सीधी कर लें। सारे शरीर को आराम से छोड़ दें। रीढ़ सीधी हो और शरीर आराम से छोड़ दें। आंख बंद कर लें। बहुत शांति से श्वास को अंदर लें। और जैसा मैंने कहा, वैसा प्रयोग पांच बार करें।

मैं ध्यान में प्रवेश करके रहूंगा। मैं ध्यान में प्रवेश करके रहूंगा। मेरा संकल्प है कि ध्यान में प्रवेश होगा। मेरा संकल्प है कि ध्यान में प्रवेश होगा। पूरे प्राणों को संकल्प करने दें कि ध्यान में प्रवेश होगा। पूरे प्राण में यह बात गूंज जाए। यह अंतस-चेतन तक उतर जाए।

पांच बार आपका हो जाए, तो फिर बहुत आहिस्ता से बैठकर शांति से रीढ़ को सीधा रखे हुए ही धीमे-धीमे श्वास को लें, धीमे छोड़ें और श्वास को ही देखते रहें। पांच मिनट विश्राम करें। उस विश्राम के समय में, जो संकल्प हमने किया है, वह और गहरे अपने आप डूब जाएगा। पांच बार संकल्प कर लें, फिर चुपचाप बैठकर श्वास को देखते रहें पांच मिनट तक। और बहुत धीमी श्वास लें फिर।

आनंद की खोज की सम्यक दिशा

प्रेम है द्वार प्रभु का-3

अनेक लोगों के मन में यह प्रश्न उठता है कि जीवन में सत्य को पाने की क्या जरूरत है? जीवन इतना छोटा है उसमें सत्य को पाने का श्रम क्यों उठाया जाए? जब सिनेमा देख कर और संगीत सुन कर ही आनंद उपलब्ध हो सकता है, तो जीवन को ऐसे ही बिता देने में क्या भूल है?

यह प्रश्न इसलिए उठता है, क्योंकि हमें शायद लगता है कि सत्य और अलग अलग हैं। लेकिन नहीं, सत्य और आनंद दो बातें नहीं हैं। जीवन में सत्य उपलब्ध हो तो ही आनंद उपलब्ध होता है। परमात्मा उपलब्ध हो तो ही आनंद उपलब्ध होता है। आनंद, सत्य या परमात्मा एक ही बात को व्यक्ति करने के अलग अलग तरीके हैं। तब इस भांति न सोचें कि सत्य की क्या जरूरत है? सोचें इस भांति कि आनंद की क्या जरूरत है? और आनंद की जरूरत तो सभी को मालूम पड़ती है, उन्हें भी जिनके मन में इस तरह के प्रश्न उठते हैं। संगीत और सिनेमा में जिन्हें आनंद दिखाई पड़ता है उन्हें यह बात समझ लेना जरूरी है कि मात्र दुख को भूल जाना ही आनंद नहीं है। सिनेमा, संगीत या इस तरह की और सारी व्यवस्थाएं

केवल देख को भुलाती हैं, आनंद को देती नहीं। शराब भी दुख को भूला देती है, संगीत भी, सिनेमा भी, सेक्स भी। इस तरह दुख को भूल जाना एक बात है और आनंद को उपलब्ध कर लेना बिल्कुल ही दूसरी बात है।

एक आदमी दरिद्र है और वह अपनी दरिद्रता को भूल जाए यह एक बात है, और वह समृद्ध हो जाए यह बिल्कुल ही दूसरी बात है। दुख को भूल जाने से सुख का भान पैदा होता है। सुख केवल दुख का विस्मरण (थवतहमज-थनसनमे) मात्र है। और आनंद? आनंद बात ही अलग है, वह किसी चीज का विस्मरण नहीं, स्मरण है। वह किसी बीज की उपलब्धि है, विधायक उपलब्धि। आनंद विधायक (ढवेपजपअम) है, सुख नकारात्मक (छंहंजपअम) है।

एक आदमी दुखी है। इस दुख को हटाने के दो उपाय हैं। एक उपाय तो यह है कि वह जाए और संगीत सुने या किसी और चीज में इस भांति डूब जाए कि दुख की उसे याद ही न रहे। संगीत में इतना तन्मय हो जाए कि उसका चित्त दूसरी तरफ जाना बंद कर दे, तो उतनी देर को उसे दुख भूला रहेगा लेकिन इससे दुख मिटता नहीं है। संगीत से जैसे ही चित्त वापस लौटेगा, दुख अपनी पूरी ताकत से पुनः खड़ा हो जाएगा। जितनी देर वह संगीत में अपने को भूला था, उतनी दूर भीतर दुख सरक रहा था, संगृहीत हो रहा था। जैसे ही संगीत से मन हटेगा दुख अपने दुगुने वेग से सामने खड़ा हो जाएगा। अब उसे पुनः विस्मृत। करने के लिए किसी ज्यादा गहरे भुलावे की जरूरत पड़ेगी। तो फिर शराब है, और दूसरे रास्ते हैं जिनसे चित्त को बेहोश किया जा सकता है। लेकिन स्मरण रहे यह बेहोशी आनंद नहीं है। बल्कि सचाई तो यह है कि जो आदमी जितना ज्यादा दुखी होता है उतना ही स्वयं को भूलने का रास्ता खोजता है। दुख से ही यह पलायन निकलता है। दुख से ही कहीं डूब जाने की, भागने की और मूर्छित हो जाने की आकांक्षा पैदा होती है।

दुख से ही लोग भागते हैं। सुख से तो कोई भागता नहीं। तो अगर आप यह कहते हैं कि जब मैं सिनेमा में बैठता हूं तो बहुत सुख मिलता है तो स्वभावतः ही प्रश्न उठता है कि जब आप सिनेमा में नहीं होते तब क्या मिलता होगा? तब निश्चित ही दुख मिलता होगा। यह इस बात की ही घोषणा है कि आप दुखी है। लेकिन सिनेमा में बैठ कर दुख मिट कैसे जाएगा? दुख की धारा तो भीतर सरकती रहेगी। हां, जितने ज्यादा आप दुखी होंगे सिनेमा में उतना ही ज्यादा सुख अनुभव होगा। जो सच में आनंदित है उसे तो शायद को सुख प्रतीत नहीं होगा। और ये जो हमारी दृष्टि है कि इसी तरह हम अपना पूरा जीवन क्यों न बिता दें..मूच्र्छित होकर, भूल कर, तब तो उचित है कि एक आदमी जीवन भर सोया रहे सिनेमा की भी क्या जरूरत है? और अगर जीवन भर सोना कठिन है तो फिर जीने की भी क्या जरूरत है? मर जाए और जब में सो जाए तो सारे दुख भूल जाएंगे। इसी प्रवृत्ति से आत्मघात की भावना पैदा होती है। सिनेमा देखने वाला, शराब पीने वाला और संगीत में डूबने वाला आदमी अगर अपने तर्क की अंतिम सीमा पर पहुंच जाए तो वह कहेगा: जीने की जरूरत क्या है? जीने में दुख है तो मरा जाता हूं। यह सब आत्मघाती (एनपबपकम) प्रवृत्तियां है। जब भी हम जीवन को भूलना चाहते हैं तभी हम आत्मघाती हो जाते हैं। लेकिन जीवन का आनंद उसे भूलने में नहीं उसकी परिपूर्णता में उसे जान लेने में है।

एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ हुआ। उसकी अनोखी शर्त हुआ करती थीं। एक राजमहल में वह अपना संगीत सुनाने को गया। उसने कहा कि मैं एक ही शर्त पर अपनी वीणा बजाऊंगा कि सुननेवालों में से किसी का भी सिर न हिले। और अगर कोई सिर हिला तो मैं वीणा बजाना बंद कर दूंगा। वह राजा भी अपनी ही तरह का था। उसने कहा वीणा रोकने की कोई जरूरत नहीं। हमारे आदमी तैनात रहेंगे और जो सिर हिलेगा वे उस सिर को ही काट कर अलग कर देंगे।

संध्यान सारे नगर में यह सूचना करवा दी गई कि जो लोग सुनने आए थोड़ा समझ कर आए, अगर संगीत सुनते वक्त कोई सिर हिला तो वह अलग करवा दिया जाएगा। लाखों लोग संगीत सुनने को उत्सुक थे। उतना बड़ा संगीतज्ञ गांव में आया था। सबको अपने दुख को भूलने का एक सुअवसर मिला था। कौन उसे चूकना चाहता? लेकिन इतनी दूर तक सुख लेने को कोई भी राजी न था। गर्दन कटवाने के मूल्य पर संगीत सुनने को कौन राजी होता? भूल से गर्दन हिल भी सकती थी। और हो सकता है सिर संगीत के लिए न हिला हो, मक्खी बैठ गई हो और गर्दन हिल गई हो या हो सकता है किसी और कारण से हिल गई हो। लोग जानते थे कि राजा पागल है और फिर बाद में इस बात की कोई सुनवाई न होगी कि गर्दन

किसलिए हिली थी। बस गर्दन का हिलना ही काफी हो जाएगा। इसके बावजूद भी उस रात्रि कोई दो तीन सौ लोग संगीत सुनने गए। वे लोग जो जीवन खोने के मूल्य पर भी सूख चाहते थे वहां आए। वीणा बजी। कोई घंटे भर तक लोग ऐसे बैठे रहे जैसे मूर्तियां हों। लोगों ने जैसे डर के कारण सांस भी न ली हो। दरवाजे बंद करवा दिए थे ताकि कोई भाग न जाए। नंगी तलवारें लिए हुए सैनिक खड़े थे किसी की भी गर्दन एक क्षण में अलग की जा सकती थी।

घंटा बीता, दो घंटे बीते, आधी रात होने के करीब आ गई। फिर राजा हैरान हुआ, उसके सिपाही भी हैरान हुए, जो कि नंगी तलवारें लिए हुए खड़े थे। उन्होंने देखा दस-पंद्रह सिर धीरे-धीरे हिलने लगे। संख्या और बढ़ी। रात पूरी होते-होते कोई चालीस-पचास सिर हिलने लगे थे। वे पचास लोग पकड़ लिए गए। राजा ने उस संगीतज्ञ को कहा: इनकी गर्दन अलग करवा दें? उस संगीतज्ञ ने कहा: नहीं। मैंने शर्त बहुत और अर्थों में रखी थी। अब यही वे लोग हैं जो मेरे संगीत को सुनने के सच्चे अधिकारी हैं। कल सिर्फ ये लोग संगीत सुनने आ सकेंगे।

राजा ने उन लोगों से कहा: ठीक है कि संगीतज्ञ की शर्त का यह अर्थ रहा हो, लेकिन तुम्हें तो यह पता था पागलो! तुमने गर्दन क्यों हिलाई? उन आदमियों ने कहा: हमने गर्दन नहीं हिलाई, गर्दन हिल गई होगी। क्योंकि जब तक हम मौजूद थे गर्दन नहीं हिली, लेकिन जब हम गैर-मौजूद हो गए फिर हमें कोई पता नहीं। जब तक हम सजग थे, जब तक हमें होश था, हम गर्दन सम्हाले रहे। फिर एक घड़ी ऐसी आ गई जब हमें कोई होश नहीं रहा। हम संगीत में इतने डूब गए कि लगभग बेहोश ही हो गए। उस बीच फिर गर्दन हिली हो तो हमें कोई पता नहीं है। तो अब भला आप हमारी गर्दन कटवा लें लेकिन कसूरवार हम नहीं है। क्योंकि हम मौजूद ही नहीं थे। हम बेहोश थे। अपने होश में हमने गर्दन नहीं हिलाई।

क्या इतनी बेहोशी संगीत से पैदा हो सकती है?

जरूर हो सकती है, मनुष्य के जीवन में बेहोशी के बहुत रास्ते हैं। जितनी इंद्रियां हैं उतने ही बेहोश होने के रास्ते भी हैं। प्रत्येक इंद्रिय का बेहोश होने का अपना रास्ता है। कान परध्वनियों के द्वारा बेहोशी लाई जा सकती है। अगर इस तरह के स्वर और इस तरह की ध्वनियां कान पर फेंकी जाए कि कान में जो सचेतना है वह सो जाए, शिथिल हो जाए..तो धीरे-धीरे कान तो बेहोश होगा ही उसके साथ ही पूरा चित्त भी सो जाएगा, क्योंकि इस हालत में कान के पास ही सारा मन एकाग्र और इकट्ठा हो जाएगा और जैसे कान में शिथिल आएगी उसके साथ ही पूरा चित्त भी शिथिल होकर बेहोश हो जाएगा। इसी तरह आंखें बेहोश करवा सकती हैं। सौंदर्य को देखकर आंखें हो सकती हैं। और आंखें बेहोश हो जाए तो पीछे से पूरा चित्त बेहोश हो सकता है।

इस भांति अगर हम बेहोश हो जाए तो होश में लौटने पर लगेगा कि कितना अच्छा हुआ। क्योंकि इस बीच किसी भी दुख का कोई पता न था, कोई चिंता न थी, कोई कष्ट न था और कोई समस्या न थी। नहीं थी इसलिए क्योंकि आप ही नहीं थे। आप होते तो ये सारी चीजें होती। आप गैरमौजूद थे इसलिए कोई चिंता न थी, कोई दुख न था, कोई समस्या न थी। दुख तो था लेकिन उसे जानने के लिए जो होश चाहिए वह खो गया था। इसलिए उसका कोई पता नहीं चलता था। इसे, जो लोग आनंद समझ लेते हैं, वे भूल में पड़ जाते हैं। उनका जीवन बिना आनंद को जाने एक बेहोशी में ही बात जाता है और आनंद से वे सदा के लिए अपरिचित ही हर जाते हैं।

इसीलिए मैं कहता हूं कि सत्य की खोज की जरूरत है, क्योंकि उसके बिना आनंद की कोई उपलब्धि न किसी को हुई है और न हो सकती है। अब अगर कोई यही पूछने लगे कि आनंद की खोज की क्या जरूरत है तो थोड़ी कठिनाई हो जाएगी। हालांकि अब तक किसी आदमी ने वस्तुतः ऐसा प्रश्न पूछा नहीं है। दस हजार वर्षों में आदमी ने बहुत प्रश्न पूछे हैं, लेकिन किसी आदमी ने यह नहीं पूछा कि आनंद की खोज की जरूरत क्या है? क्योंकि इस बात को पूछने का अर्थ यह होगा कि हम दुख से तृप्त हैं। लेकिन दुख से तो कोई भी तृप्त नहीं है। अगर दुख से ही तृप्त होते तो फिर आप सिनेमा भी क्यों जाते? संगीत भी क्यों सुनते? वह आनंद की ही खोज चल रही है, लेकिन गलत दिशा में। गलत दिशा में इसलिए क्योंकि दुख को भूलने से आनंद उपलब्ध नहीं होता। हां, आनंद उपलब्ध हो जाए तो दुख जरूर विलीन हो जाता है। अंधेरे करके बैठ

जाऊं और भूल जाऊं अंधेरे को, तो भी कमरा अंधेरा ही रहेगा। लेकिन हां, दिया मैं जला लूं तो अंधेरा जरूर विलीन हो जाएगा।

एक बात तय कि हम जो हैं, जैसे हैं, जैसे होने से तृप्त नहीं हैं। इसीलिए खोज की जरूरत है। जो तृप्त है उसे खाज की कोई भी जरूरत नहीं है। हम जो हैं उससे तृप्त नहीं हैं। हम जहां वहां से तृप्त नहीं हैं। भीतर एक बेचैनी है, एक पीड़ा है, जो निरंतर कहे जा रही है कि कुछ गलत है, कुछ गड़बड़ है। वही बेचैनी कहती है..खोजो! उसे फिर सत्य नाम दो, चाहे और कोई नाम दो उससे भेद नहीं पड़ता। संगीत में और सिनेमा में भी उसकी ही खोज चल रही है। लेकिन वह दिशा गलत और भ्रांत है। जब कोई आत्मा की दिशा में खोज करता है, तब ठीक और सम्यक दिशा में उसकी खोज शुरु होती है। क्योंकि दुख को भूलने से आज तक कोई आनंद को उपलब्ध हनीं हुआ है लेकिन आत्मा को जान लेने से व्यक्ति जरूर आनंद को उपलब्ध नहीं हुआ है, लेकिन आत्मा को जान लेने से व्यक्ति जरूर आनंद को उपलब्ध हो जाता है। जिन्होंने उस सत्य की थोड़ी सी झलक पा लीद है उनके पूरे जीवन में एक क्रांति हो जाती है। उनका सारा जीवन आनंद और मंगल की वर्षा बन जाता है। फिर वे बाहर संगीत में भूलने नहीं जाते क्योंकि उनके हृदय की वीणा पर स्वयं एक संगीत एक संगीत बजने लगता है। फिर वे बाहर सुख की खोज में नहीं भटकते हैं, क्योंकि उनके भीतर एक आनंद का झरना फूट जाता है।

जो भीतर दुखी है, वह बाहर सुख को खोजता है, लेकिन जो भीतर दुखी है वह बाहर सुख को कैसे पा सकेगा? जो भीतर आनंद से भर जाता है, उसकी बाहर सुख की खोज जरूर बंद हो जाती है, क्योंकि जिसे वह खोजता था वह तो उसे स्वयं के भीतर ही उपलब्ध हो गया है।

एक भिखारी एक बड़ी महानगरी में मरा। वह एक ही जगह पर बैठ भीख मांगता रहा। जिंदगी भर वही बैठकर एक-एक पैसे के लिए गिड़गिड़ाया। वहीं जीया और वहीं मरा भी। उसके मर जाने पर उसकी लाश को म्युनिसिपल कर्मचारी घसीट कर मरघट ले गए। उसके कपड़े चिथड़ों में आग लगा दी गई। लोगों ने सोचा..तीस साल तक उस भिखारी ने इस जमीन को खराब और अपवित्र किया है, क्यों न इस भूमि की थोड़ी सी मिट्टी को खुदवा कर फेंक दिया जाए? मिट्टी जब बदली गई तो वे हैरान हो गए। जहां वह भिखारी बैठा करता था वहीं एक बड़ा खजाना गड़ा मिला। वह उसी भूमि पर बैठकर, उसी खजाने को ऊपर बैठकर, तीस वर्षों तक एक-एक पैसे के लिए भीख मांगता रहा। उसे कोई कल्पना भी न थी कि जिस भूमि पर वह बैठता है वहां कोई खजाना भी हो सकता है।

यह किसी एक भिखारी की कहानी नहीं है, यह हर आदमी की कहानी है। हर आदमी जहां बैठा है, जहां एक-एक पैसे सके सुख के लिए गिड़गिडा रहा है, मांग रहा है और हाथ हीला रहा है, उसी जमीन में, उसके ही नीचे बहुत बड़े आनंद के खजाने गड़े हुए हैं। यह उसकी मर्जी है कि वह उन्हें खोजता है या नहीं, कोई उसे मजबूर नहीं कर सकता है।

अगर उस भिखमंगे को जाकर मैंने कहा होता..मित्र, गड़े हुए खजाने की खोज करो। और वह मुझसे कहता..क्या जरूरत है मुझे गड़े हुए खजाने की खोज की? भीख मांग लेता हूं और मजे से जीता हूं। मैं क्यों खोजूं? मैं तो ऐसे ही जिंदगी बिता दूंगा?

तो मैं उससे क्या कहता? कहता कि ठीक है मांगो भीख! लेकिन जो भीख मांग रहा है वह कहे कि मुझे खजाने की कोई जरूरत नहीं है तो वह पागल है। अगर जरूरत नहीं है तो भीख मांग रहा है?

सिनेमा और संगीत में सुख खोज रहा है और कहे कि आनंद की खोज की मुझे क्या जरूरत है? तो वह पागल है, नहीं तो फिर सिनेमा में, संगीत में, शराब में और सेक्स में किस की भीख मांग रहा है? किसको खोज रहा है?

हम भीख मांगने वाले लोग हैं और जब कोई हमें खजाने की खबर देता है तो हमें विश्वास नहीं आता क्योंकि जो एक-एक पैसे की भीख मांग रहा है उसे विश्वास ही नहीं हो सकता कि खजाना भी हो सकता है। भीख मांगने वाला खजाने पर विश्वास नहीं कर पाता। उसे खजाना मिल भी जाए तो वह यही सोचेगा कि कहीं मैं सपना तो नहीं देख रहा हूं? उसे यह विश्वास ही नहीं आता है कि मैं भीख मांगने वाला और मुझे खजाना भी मिल सकता है! इसी बात को भुलाने के लिए वह

कहना शुरु करता है कि जरूरत क्या है खजाने खोजने की? मैं तो अपनी भीख मांगने में मस्त हूं। मैं क्यों परेशान होऊं? छोटी सी जिंदगी मिली है, उसे मैं आनंद की खोज में क्यों गंवा दूं? अगर आनंद की खोज में भी जिंदगी गंवाई जाती है, तो फिर मैं यह पूछना चाहता हूं कि कमाई किस बात में की जाएगी?